“KATNA SHAMI KA VRIKSH PADAMAPANKHURI KI DHAAR SE’ UPANYAS KA ALOCHNATMAK ADHYAYAN”

A dissertation submitted during (year) 2016 to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the award of M.Phil Degree in Hindi, School of Humanities.

By

Ambika kumari

15HHHL16

M.Phil Hindi, 2016

Department of Hindi, School of Humanities

University of Hyderabad

(P.O.) Central University, Gachibowli

Hyderabad - 500046

Telangana State (India)

“‘काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से’ उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन”

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की एम. फिल. हिन्दी उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध)

शोधार्थी

अम्बिका कुमारी

15HHHL16

एम.फिल हिन्दी

वर्ष -2016

हिन्दी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद – 500046

तेलंगाना प्रदेश

CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation entitled **"'KATNA SHAMI KA VRIKSH PADAMAPANKHURI KI DHAAR SE' UPANYAS KA ALOCHNATMAK ADHYAYAN" ["'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन"]** submitted by **Ambika kumari** bearing Reg. No. **15HHHL16** in partial fulfillment of the requirements for the award of Master of philosophy in Hindi in a bonafide work carried out by her under my supervision and guidance which is a plagiarism free dissertation.

As far as I know the dissertation has not been submitted previously in part or in full to this or any other university of institution for the award of any degree or diploma.

Head of the department   Signature of the supervisor

Dean of the School of humanities

DECLARATION

I **AMBIKA KUMARI**, hereby declare that this dissertation entitle **"'KATNA SHAMI KA VRIKSH PADAMAPANKHURI KI DHAAR SE' UPANYAS KA ALOCHNATMAK ADHYAYAN" ["'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन"]** submitted by me under the guidance and supervisor of **PROF. GAJENDRA KUMAR PATHAK** is a bonafide research work which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my dissertation can be deposited in shodhganga/INFLIBNET.

Name: AMBIKA KUMARI

Date: /06/2016

(signature of the student)

Reg. No. 15HHHL16

अनुक्रमणिका

'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन

पृ.सं.

भूमिका 01-05

प्रथम अध्याय 01-29

सुरेन्द्र वर्मा : परिचय एवं रचना यात्रा

द्वितीय अध्याय 30-58

'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' उपन्यास की कथावस्तु का विश्लेषण

तृतीय अध्याय 59-84

'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' का शिल्पगत वैशिष्ट्य

3.1 शैली

3.2 भाषा

3.3 संवाद

3.4 विधागत संक्रमण

3.5 साहित्यिक आलोचनात्मकता

उपसंहार **85-87**

सन्दर्भ ग्रंथ सूची **88-90**

भूमिका

संस्कृत साहित्य के महान कवि एवं नाटककार 'कालिदास' के जीवन पर केन्द्रित है सुरेन्द्र वर्मा का उपन्यास 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' । हिंदी साहित्य में बहुत-सी रचनाएँ-आलोचनाएँ कालिदास को केंद्र में रख कर लिखी गयी हैं। कालिदास एक और अकेले ऐसे ऐतिहासिक और पौराणिक पात्र हैं जिन्होंने हिंदी साहित्य के किसी एक विधा को प्रभावित नहीं किया, बल्कि आधुनिक हिंदी साहित्य के विभिन्न विधाओं को प्रभावित किया, चाहे वह विधा कविता हो, नाटक हो, उपन्यास हो, निबंध हो या आलोचना। कालिदास ने इन सभी विधाओं को एक साथ प्रभावित किया है। आधुनिक युग के शुरुआत में प्रसिद्ध निबंधकार महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'कालिदास की निरंकुशता' नाम से एक निबंध लिखा था। इसी तरह प्रखर आलोचक हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'कालिदास की लालित्य-योजना' शीर्षक से कालिदास की रचना-प्रक्रिया पर बात की। नागार्जुन ने 'कालिदास सच-सच बतलाना' शीर्षक से कालिदास पर एक कविता लिखी, जिसमें कालिदास के भावात्मक क्षणों को उद्घाटित किया गया है। आधुनिक संवेदना संपन्न नाटककार मोहन राकेश का नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' तो कालिदास के सन्दर्भ में प्रसिद्ध है ही।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य में कालिदास को केंद्र में रखकर लिखने की एक लम्बी परंपरा है। इसी परंपरा में सुरेन्द्र वर्मा का यह उपन्यास 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' भी आता है। यह उपन्यास इस परंपरा

में होते हुए भी अपने पूर्ववर्ती रचनाओं से भिन्न है क्योंकि अन्य सभी रचनाओं में कालिदास के रचनात्मक और व्यक्तिगत जीवन के किसी एक पक्ष पर ध्यान दिया गया है और रचना के केंद्र में उसी एक पक्ष को रखा गया है । जैसे- 'कालिदास की लालित्य-योजना' में उनकी रचना-प्रक्रिया को केंद्र में रखा गया है तो 'आषाढ़ का एक दिन' में उनके व्यक्तिगत जीवन को प्रमुखता दी गई है । जबकि सुरेन्द्र वर्मा का यह उपन्यास एक व्यापक फलक की रचना है । इसमें कालिदास की रचना-प्रक्रिया और उनके व्यक्तिगत जीवन को सामान रूप से महत्त्व देते हुए एक रचनाकार के जीवन की रचनात्मक, व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राजनैतिक द्वंद्व की स्थिति का सफल और सार्थक चित्रण किया गया है ।

हिंदी साहित्य में सुरेन्द्र वर्मा एक प्रसिद्ध नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उपन्यासकार के रूप में इनको प्रसिद्धि 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास से मिली । 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास जहाँ पाठक और आलोचक दोनों के बीच बहुचर्चित रहा, वहीं उनके इस उपन्यास को अधिकांश लोग जानते भी नहीं है और आलोचकों ने तो उनके इस उपन्यास को नजरअंदाज किया ही । अब प्रश्न यह है कि इस उपन्यास पर शोध कार्य करने की आवश्यकता क्यों महसूस हुई ? इसका कोई एक उत्तर या कारण नहीं है बल्कि इसके कई कारण हैं । सबसे मुख्य कारण यह है कि पाठकों और आलोचकों द्वारा आखिर क्यों इस उपन्यास को नजरअंदाज किया गया? वर्तमान साहित्य में जहाँ आधुनिकता-उत्तरआधुनिकता की दौर से गुजर रहे व्यक्ति और समाज को केंद्र में रखकर रचनाएँ की जाती है वहीं उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा ने कालिदास जैसे पौराणिक एवं ऐतिहासिक पात्र और उनके जीवन को केंद्र में रखकर

यह उपन्यास क्यों लिखा ? कालिदास पर पहले भी बहुत-सी रचनाएँ लिखी गई हैं फिर सुरेन्द्र वर्मा को कालिदास पर उपन्यास लिखने की आवश्यकता क्यों महसूस हुई ? इन्हीं कारणों से इस उपन्यास के प्रति मैं आकर्षित हुई और मुझे इस पर कार्य करने की आवश्यकता भी महसूस हुई । इस कृति पर शोध-कार्य करने का मेरा उद्देश्य पाठक और आलोचक द्वारा नकारे गये उपन्यास 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' का आलोचनात्मक ढंग से विवेचन-विश्लेषण कर उसके महत्त्व को हिंदी साहित्य में रेखांकित करना है ।

शोध-प्रविधि :-

जैसा कि इस लघु शोध-प्रबंध के शीर्षक से पता चलता है कि इसमें 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है । इसीलिए मैंने इस शोध कार्य के लिए आलोचनात्मक पद्धति का प्रयोग किया है । इस पद्धति के अंतर्गत मैंने इस उपन्यास को साहित्यिक मूल्य, वास्तविक आयाम और युग-चेतना के सन्दर्भ में विवेचित-विश्लेषित करते हुए इसकी आलोचना की है तथा एक कलाकार के जीवन की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों एवं उन परिस्थितियों से उत्पन्न उसके भिन्न-भिन्न मनःस्थितियों को विश्लेषित करते हुए उसके द्वंद्वो को दिखाने का प्रयास किया है ।

अध्ययन और विश्लेषण की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध को तीन अध्यायों में विभाजित किया गया है ।

प्रथम अध्याय में उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा का परिचय देते हुए तथा उनकी रचनाओं की आलोचना करते हुए उनके रचनात्मक विकास को दर्शाया गया है ।

द्वितीय अध्याय में 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' उपन्यास की कथावस्तु का विश्लेषण करते हुए कालिदास के माध्यम से एक आधुनिक मनुष्य एवं रचनाकार के व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि विभिन्न परिस्थितियों तथा उन परिस्थितियों से उत्पन्न भिन्न-भिन्न मनःस्थितियों एवं द्वंद्वों को चित्रित करते हुए उसका विश्लेषण किया गया है ।

तृतीय अध्याय में 'काटना शमी का वृक्ष पद्मापंखुरी की धार से' उपन्यास के शिल्पगत वैशिष्ट्य पर चर्चा करते हुए उसकी शैली, भाषा, संवाद की विशिष्टता को दिखाया गया है । साथ ही 'विधागत संक्रमण' पर बात करते हुए इस उपन्यास में विद्यमान काव्यात्मकता, नाटकीयता तथा साहित्यिक आलोचना के महत्त्व के आधार पर इस उपन्यास के शिल्पगत वैशिष्ट्य को स्थापित किया गया है ।

इस शोध कार्य के संपन्न होने में मैं अपने शोध निर्देशक प्रो० गजेन्द्र कुमार पाठक के अमूल्य योगदान के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । आपने न केवल विषय-चयन में मेरी मदद की बल्कि समय-समय पर शोध से संबंधित मेरे पश्नों एवं उलझनों को सुलझाते हुए इस कार्य को करने के लिए प्रोत्साहित भी किया ।

हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो० आर० एस० सर्राजू तथा विभाग के अन्य सभी आचार्यों के प्रति, जिनके सहयोग एवं प्रोत्साहन से यह कार्य संभव हो सका, अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

हैदराबाद — अम्बिका कुमारी

दिनांक - 30-06-2016

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

भूमिका

उपसंहार

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

सुरेन्द्र वर्मा : परिचय एवं रचना यात्रा

नाट्य-साहित्य और कथा-साहित्य में प्रमुख स्थान रखने वाले नाटककार तथा कथाकार सुरेन्द्र वर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के झाँसी में 1941ई० में हुआ । इन्होंने भाषा-विज्ञान में एम० ए० की उपाधि प्राप्त की । प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय इतिहास तथा सभ्यता एवं संस्कृति में इनकी अभिरुचि तो है ही, साथ में रंगमंच तथा अंतर्राष्ट्रीय सिनेमा में गहरी दिलचस्पी भी है । इन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत नाट्य लेखन से किया और नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित हुए । इन्होंने अपने जीवन का काफी समय एन० एस० डी० (national school of drama) में व्यतीत किया है जिसका प्रभाव इनके नाटकों के साथ-साथ उपन्यासों पर भी दिखता है । उदाहरणस्वरूप हम इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' को देख सकते हैं जिसके परिवेश का अधिकांश भाग एन० एस० डी० का है । साहित्य के क्षेत्र में इन्हें बहुत से पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है । नाट्य-लेखन के लिए सुरेन्द्र वर्मा को ' संगीत नाटक अकादमी ' से सम्मानित किया गया । इसके साथ-साथ उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 'भारतेंदु पुरस्कार' तथा मध्य प्रदेश सरकार द्वारा 'कालिदास पुरस्कार' भी मिला । प्रसिद्ध उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' के लिए सन् 1996 में ' साहित्य अकादमी ' पुरस्कार द्वारा सम्मानित किये गये ।

किसी रचनाकार के रचनात्मक विकास को हम उस रचनाकार के व्यक्तित्व का विकास भी कह सकते हैं क्योंकि " व्यक्तित्व नाना प्रकार की विशेषताओं का वह सजीव पुंज है जो एक व्यक्ति को हजारों से अलग करता है । व्यक्तित्व समसामयिक प्रतिक्रिया है, जो किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण उपलब्धियों को वह बनाता है जो वह है । किसी कवि के व्यक्तित्व का मतलब दो प्रकार से स्पष्ट होता है । पहला उस कवि की आत्माभिव्यक्ति, दूसरा उसके निर्मित चरित्रों , मनःस्थितियों में उसकी आत्मा की छाया । कोई भी कवि अथवा लेखक अपने व्यक्तित्व को अपनी कृति से या तो पूर्ण अलग करेगा या उसमें अन्तर्निहित कर देगा , किन्तु व्यक्तित्व को अलग करके भी उसे अपने चरित्रों के माध्यम से अपने को व्यक्त करना होगा ।"[1] इनमें सुरेन्द्र वर्मा का व्यक्तित्व दूसरे प्रकार का है , क्योंकि वे अपनी रचनाओं में आत्माभिव्यक्ति नहीं करते हैं बल्कि अपने चरित्रों के माध्यम से वे स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं ।

साहित्यकार अपने जीवनानुभवों के आधार पर ही सृजन करते हैं तथा उसी के अनुरूप जीवन-दर्शन निर्धारित करते हैं और उन्हें रचना के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं । वही उनकी रचना दृष्टी होती है, परन्तु यह रचना-दृष्टि परिवर्तनशील होती है क्योंकि बढ़ते अनुभव के साथ-साथ रचनाकार के व्यक्तित्व का विकास होता जाता है और उनकी रचना-दृष्टि समृद्ध और विकसित होती जाती है । यहाँ हम सुरेन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व के विकास और रचनात्मक विकास को उनकी रचनाओं के माध्यम से देखेंगे।

नाटककार सुरेन्द्र वर्मा :-

साठोत्तर हिंदी नाटककारों में सुरेन्द्र वर्मा का प्रमुख स्थान है । स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाट्य जगत के प्रथम दौर में जगदीशचन्द्र माथुर, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल, तथा मोहन राकेश का नाम उल्लेखनीय है । इनमें मोहन राकेश के नाटकों में कथ्य और शिल्प के स्तर पर प्रयोगशील प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है । इसी प्रयोगशील परम्परा में सुरेन्द्र वर्मा का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इनकी रचनाएँ मोहन राकेश के लेखन से प्रभावित भी है जिसके बारे में सुरेन्द्र वर्मा स्वयं कहते हैं "प्रभाव की बात मैं नहीं जानता, हो भी सकता है, शायद है भी ।"[2] आधुनिक भावबोध से युक्त सुरेन्द्र वर्मा के नाटक साठोत्तरी प्रयोगशील परम्परा में बहुचर्चित है, क्योंकि अन्य नाटककारों की अपेक्षा समसामयिक समस्याओं को उसकी समग्रता में, उसके भिन्न-भिन्न पहलुओं के साथ प्रस्तुत करने में सुरेन्द्र वर्मा अधिक कामयाब हुए हैं ।

प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय इतिहास तथा सभ्यता एवं संस्कृति में जो इनकी रुचि है उसे हम उनके नाटकों के विषय-वस्तु चयन, परिवेश और पात्र संयोजन में भी देख सकते हैं । सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों की विषय-वस्तु, पात्र, परिवेश तथा वातावरण प्राचीन और ऐतिहासिक है, परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि इनके नाटकों में अतीत का तथाकथित विवरण या अतीत का गौरव-गान किया गया है । वे इतिहास का सहारा तो लेते हैं परन्तु "नाटककार प्रसाद की तरह न तो इतिहास के द्वारा अतीत के गौरव की प्रतिष्ठा और सांस्कृतिक चेतना के पुनर्जागरण का लक्ष्य लेकर चलते हैं, न प्राचीन इतिहास को वर्त्तमान से जोड़कर उसकी

पुनरावृत्ति करते हैं बल्कि इतिहास यहाँ केवल एक आधार है"।[3] सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों का कथ्य देखने पर स्पष्ट होता है कि इनका उद्देश्य चरित्र और घटनाओं की ऐतिहासिकता सिद्ध करना नहीं है, बल्कि पात्रों के अंतर्विरोध और प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्ति देना है । घटनाओं और चरित्रों के माध्यम से आधुनिक प्रवृत्तियों को उजागर करना है । इनका उद्देश्य इतिहास का चित्रण कम, समसामयिक समस्याओं को चित्रित करना ज्यादा है । अतः यहाँ डॉ इंद्रनाथ मदान के द्वारा की गयी आलोचना इनके नाटकों के कथ्यों के लिए सटीक है कि "इतिहास उपकरण मात्र है जिनका उपयोग कथ्य के प्रति है, ऐतिहासिक घटनाओं या चरित्रों के प्रति नहीं, अपने कथ्य के अनुरूप घटनाओं की सृष्टि या प्राचीन चरित्रों को बिल्कुल आधुनिक प्रवृत्तियों के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करने में उनको हिचक नहीं होती ।"[4]

सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों की एक बड़ी विशेषता है स्त्री-पुरुष संबंधों का सूक्ष्म विवेचन-विश्लेषण । उनके नाटकों में स्त्री-पुरुष संबंधों की गहराई से छानबीन हुई है । वे अपनी रचनाओं में प्रेम और सम्भोग के सूक्ष्मातिसूक्ष्म संकेतों, अनुभवों तथा मुद्राओं का नाटकीय तथा प्रभावशाली वर्णन प्रस्तुत करते हैं । जीवन के इन अन्तरंग क्षणों को अभिव्यक्त करने में इनकी भाषा पूरी तरह सक्षम है । इनके नाटकों में एकाकीपन, संत्रास, भय, निराशा, जीवन की निरर्थकता की अनुभूति आदि का चित्रण भी किया गया है । उनके नाटक एक दृश्यबंध को प्रकाश एवं अन्धकार के माध्यम से, ध्वनि, संगीत, मौन, एवं सन्नाटे के बल पर अनेक दृश्यबंधों से युक्त होने का आभास देने में भी समर्थ है ।

‘द्रोपदी’, ‘सेतुबंध’, ‘नायक खलनायक विदूषक’, ‘सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक’, ‘आठवां सर्ग’, ‘छोटे सैयद बड़े सैयद’, ‘एक दूनी एक’, ‘शकुंतला की अंगूठी’, ‘कैद-ए-हयात’, ‘रति का कंगन’ आदि इनके प्रसिद्ध नाटक हैं।

द्रोपदी:-

सुरेन्द्र वर्मा की पहली रचना या पहला नाटक ‘द्रोपदी’ है। इसी के लेखन के साथ उन्होंने नाट्य-साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। ‘द्रोपदी’ नाटक सर्वप्रथम त्रैमासिक पत्रिका ‘नटरंग’ अंक 14, 1970 ई० में प्रकाशित हुआ। बाद में 1972 ई० में पुस्तक के रूप में ‘तीन नाटक’ नामक नाट्य-संकलन में प्रकाशित हुआ। ‘तीन नाटक’ में उनके तीन नाटक, ‘द्रोपदी’ ‘सेतुबंध’ तथा ‘नायक खलनायक विदूषक’ संकलित है। ‘द्रोपदी’ नाटक से उनको विशेष ख्याति प्राप्त हुई। यह नाटक एक व्यावसायिक कंपनी के अफसर ‘मनमोहन’ और उसकी पत्नी ‘सुरेखा’ पर केन्द्रित है। “इसमें महाभारत कालीन द्रोपदी के पाँच पतियों के मिथक को आधुनिक जीवन-सन्दर्भ के अनुकूल बिल्कुल नए रूप में प्रस्तुत किया गया है।”[5] सुरेखा के पति मनमोहन का व्यक्तित्व खंडित है। वह अनैतिक है, महत्त्वाकांक्षी है, अर्थ-लोलुप है, कामुक है, और आत्मान्वेषी भी है। मनमोहन का यह खंडित व्यक्तित्व ही सुरेखा के लिए पाँच पति बन जाता है जिसके बारे में सुरेखा अपनी सहेली मंदा से कहती है “जैसे - अब वो आदमी एक नहीं, एक से ज्यादा हैं? उसके हिस्से हो गये हैं, अलग-अलग और कभी एक से तुम्हारा सामना होता है कभी दूसरे से।”[6] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यह नाटक अस्त-व्यस्त आधुनिक समाज

व्यवस्था से उत्पन्न आधुनिक मनुष्य की मनःस्थिति और उस मनःस्थिति के कारण विघटित और खंडित होते पारिवारिक मूल्यों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है ।

सेतुबंध :-

'सेतुबंध' गुप्तकालीन ऐतिहासिक परिवेश में आधुनिक जीवन की समस्याओं का चित्रण करने वाला नाटक है । इसमें राजदुहिता 'प्रभावती' और उनके प्रेमी 'कालिदास' के जीवन के करुण पक्ष को मानवीय सहानुभूति के साथ उभारा गया है । प्रभावती कालिदास से प्रेम करती है, परन्तु राजनीतिक सत्ता के दबाव में आकर वाकाटक नरेश रुद्रसेन की पत्नी बनने पर विवश हो जाती है । प्रभावती के माध्यम से " इसमें आधुनिक नारी की प्रेम-सम्बन्धी अवधारणा को सशक्त रूप में प्रस्तुत किया गया है ।"[7] जिसे हम प्रभावती के इन वाक्यों में देख सकते हैं जब प्रभावती कहती है- " क्या कोई स्थिति ऐसी नहीं हो सकती, जिस में परपुरुष पति बन जाये और पति परपुरुष ?"[8] यहाँ परपुरुष से प्रभावती का तात्पर्य अपने प्रेमी कालिदास से है । इस नाटक में यह भी दिखाया गया है कि शादी करने के लिए दो व्यक्तियों का भावात्मक रूप से मिलना जरूरी है न कि शारीरिक रूप से । तभी तो प्रभावती कहती है " मैं माँ बनी हूँ , लेकिन पत्नी नहीं । कौन समझेगा कि मेरी भावना आज तक कुमारी है ...।"[9] आज 21वीं सदी में भारत में जिस 'मैरिटल रेप' की बात हो रही है , वह बात नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने 70-80 के दशक में लिखे गये अपने इस नाटक में प्रवरसेन नामक एक पात्र के माध्यम से कहलवायी है कि " भावना के बिना शारीरिक सम्बन्ध जैसे बलात्कार होता है ।"[10] इस प्रकार हम देखते हैं कि

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष में लिखा गया यह नाटक पूर्णरूपेन आधुनिक है , जिसके केंद्र में राजनीतिक दबाव , सामाजिक मान-मर्यादा तथा नैतिक मूल्यों से विवश एक स्त्री है। इस स्त्री के माध्यम से नाटककार ने सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता पर बल दिया है ।

नायक खलनायक विदूषक :-

'सेतुबंध' के बाद इनका नाटक 'नायक खलनायक विदूषक' आया । इसमें यह दिखाया गया है कि परिस्थिति किस प्रकार एक व्यक्ति को विवश करके अनेक रूपों में आचरण करने के लिए बाध्य कर देती है । एक ही व्यक्ति कभी नायक , कभी खलनायक और कभी विदूषक जैसा आचरण करता है । इसमें आज के मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा तथा नियति के संघर्ष का चित्रण किया गया है साथ ही अभिनेता वर्ग के जीवन की त्रासदी को अभिव्यक्त करते हुए कलाकार की ऊब तथा निरशता को तीखे ढंग से व्यक्त किया गया है । इस नाटक में राज्य हित और व्यक्तिगत हित के बीच के संघर्ष को दिखाते हुए यह भी बताया गया है कि आधुनिक मनुष्य अपने हित और अस्तित्व के प्रति जागरूक हो चुके हैं । जब कपिंजल विदूषक की भूमिका करने से मना कर देता है तो सूत्रधार उससे कहता है – " देखो, कपिंजल, तुम जानते हो कि आज इस नाटक की प्रस्तुति नीलनगर के लिए कितना आवश्यक है । राज्य के हित के सामने एक नट की व्यक्तिगत इच्छा अधिक मत्त्वपूर्ण हो सकती है ?..." [11] सूत्रधार के इस बात पर कपिंजल कहता है – " अब राज्य के लिए है ...फिर कल के दिन कोई धर्मगुरु आ जाएगा , तो धर्म के लिए होगा ।...यह दुष्चक्र कभी नहीं टूटेगा

श्रीमान । निर्णय लेना ही होगा ।... और मैंने ले लिया है ।"[12] यहाँ कपिंजल एक आधुनिक मनुष्य है । आधुनिक मनुष्य निरंतर अपने व्यक्तित्व का विकास चाहता है । कपिंजल विदूषक की भूमिका इसीलिए नहीं करना चाहता क्योंकि विदूषक के व्यक्तित्व का कुछ विकास ही नहीं होता – "रेखा न ऊपर उठती है , न नीचे गिरती है । जिस बिंदु से इसका आरम्भ होता है, उसी बिंदु पर इसका अंत हो जाता है ...।"[13] इस प्रकार हम देखते हैं कि इस नाटक में विदूषक का अभिनय करने वाले एक अभिनेता के माध्यम से अभिनेता वर्ग के ऊब और निरशता का चित्रण तो किया ही गया है साथ ही अपने सार्थक अस्तित्व की तलाश करते आधुनिक मनुष्य की उन परिस्थितियों की ओर भी संकेत किया गया है जिसके कारन एक ही मनुष्य कभी नायक, कभी खलनायक, तो कभी विदूषक बनने पर विवश हो जाता है ।

सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक :-

उपर्युक्त नाटक के बाद सन् 1975 में इनका नाटक ' सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक ' प्रकाशित हुआ । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लिखा गया यह नाटक सुरेन्द्र वर्मा के श्रेष्ठ नाटकों में से एक है । यह नाटक प्रत्यक्ष रूप में ऐतिहासिक परिवेश का नाटक है, परन्तु इसका कथ्य, दृष्टिकोण, प्रस्तुति एवं इसकी समस्याएँ पूरी तरह आधुनिक है । " यह नाटक समसामयिक स्तर पर मूल्यों के साथ-साथ शासक और शासनतंत्र के आपसी रिश्ते के विश्लेषण के माध्यम से सत्तातंत्र के समक्ष स्वयं सत्ताधारी की विवशता, नपुंसकता और त्रासदी को भी रेखांकित करता है । "[14] इस नाटक में नारीत्व की सार्थकता की तलाश की गयी है जिसे हम शीलवती के

इस कथन से समझ सकते हैं “ नारीत्व की सार्थकता मातृत्व में नहीं है, केवल पुरुष के संयोग के इस सुख में ... मातृत्व केवल गौण उत्पादन है ... जैसे दही से निकलता तो मक्खन है, लेकिन तलछट में थोड़ी-सी छाछ भी बच जाती है - शैया पर नारी केवल भोग्या है, मातृत्व की आकांक्षिनी मात्र नहीं ।”[15]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस नाटक में स्त्री को आदर्शवादी या दैवीय रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया गया है बल्कि उसके लौकिक स्वरूप को स्वीकारते हुए उसके शारीरिक महत्त्वाकांक्षा एवं यौन इच्छाओं-आकांक्षाओं का यथार्थ चित्रण किया गया है । इस नाटक में नाटककार ने आज तक मानी जा रही इस मान्यता तथा रूढ़ि को तोड़ने का प्रयास किया है कि नारीत्व की सार्थकता मातृत्व में है । इसके साथ ही इस नाटक में प्राचीनकाल से चली आ रही ‘नियोग-प्रथा’ पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करते हुए उसके खोखलेपन को उजागर किया गया है । स्त्री के शारीरिक महत्त्वाकांक्षा को महत्त्व देने के साथ-साथ इस नाटक में पुंसत्वहीन पुरुष के मानसिक कष्ट, पीड़ा और तनाव को भी अभिव्यक्त किया गया है और इसको अभिव्यक्त करने में सुरेन्द्र वर्मा की भाषा पूर्ण रूप से सक्षम है भले ही यह सक्षमता मोहन राकेश के प्रभाव के कारण आयी हो । ‘सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक’ नाटक भाषा और परिवेश में राकेशजी के ‘लहरों के राजहंस’ तथा ‘आधे-अधूरे’ से प्रभावित है । “ सही शब्दों में निश्चय ही यह हिंदी में अकेला नाटक है जो वर्जनाओं, पुराने मूल्यों, सामाजिक निषेधों और पति-पत्नी के रिश्ते को लेकर बनी हुई अत्यंत नैतिक पवित्र तस्वीर को तोड़ता है । बिना किसी कुंठा के या अपराध-बोध के ।”[16]

आठवाँ सर्ग :-

सन् 1976 में सुरेन्द्र वर्मा का प्रसिद्ध नाटक ‘ आठवाँ सर्ग ’ प्रकाशित हुआ । यह नाटक कालिदास के जीवन पर आधारित है, जिसमें कालिदास द्वारा रचित महाकाव्य ‘कुमारसंभवम्’ के आठवें सर्ग के माध्यम से ‘लेखकीय अभिव्यक्ति स्वतंत्रता बनाम शासकीय प्रतिबन्ध’ पर विचार किया गया है । लेखकीय अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के सन्दर्भ में ही इस नाटक में नैतिक-अनैतिक, श्लील-अश्लील, का प्रश्न तथा सत्ता और राजनीति से जुड़े प्रश्न एवं रचनाकार की अस्मिता से जुड़े प्रश्न उठाये गये हैं । नाटक के शुरुआत में कालिदास महाकाव्य पूरा करके वापस आते हैं । कालिदास को सम्मानित करने के लिए राजप्रसाद में सम्मान-समारोह आयोजित किया जाता है जिसमें कालिदास को काव्यपाठ करना है । कालिदास काव्य-पाठ करते हुए जैसे ही शिव-पार्वती के काम-क्रीड़ा का वर्णन करते हैं, धर्मगुरु क्रोधित हो जाते हैं और कहते हैं- “यह सर्ग अत्यंत अश्लील है ...इसका रचयिता पापी है । इसके स्रोता पापी हैं । ऐसे अधर्मी और अनाचारी कवि के सम्मान समारोह में जो भाग ले, वह पापी है ।जो उसका निमित्त बने, वह पापी है । जो उसमें सहायता दे, वह पापी है ।”[17] राजपुरोहित, धर्माध्यक्ष, महादंडनायक, मंत्रिगण और नगर के प्रभावशाली व्यक्ति धर्मगुरु के इस कथन से सहमत होते हैं । आर्य सौमित्र और आठ-दस रचनाकार ही कालिदास के पक्ष में बोलते हैं । आर्य सौमित्र कहते हैं “सर्ग अश्लील नहीं है । अश्लीलता आरोप करनेवालों की दृष्टियों में है, उनकी आखों में है, उनके मन में है ।”[18] यहाँ हम देखते हैं कि इस नाटक में श्लीलता-अश्लीलता पर गंभीरतापूर्वक विचार-विमर्श किया गया है और अंततः यह बात सामने आती है कि अश्लीलता

देखने वालों की दृष्टि में होती है । इस बात को लेखक सम्राट चन्द्रगुप्त के माध्यम से कहते हैं " पति-पत्नी के बीच कुछ भी अश्लील नहीं होता, क्योंकि वह पूरी तरह देने और पूरी तरह पाने का सम्बन्ध है । इसमें अश्लीलता उसी को मिलेगी, जिसकी दृष्टि अधूरी होगी, अर्थात् जो केवल नग्नता देखेगा, उसे औचित्य देनेवाली पूर्णता नहीं, सार्थकता नहीं ।"[19]

इस प्रकार हम देखते हैं कि " महाकवि कालिदास के महाकाव्य 'कुमारसंभव' के 'आठवाँ सर्ग' के उद्दाम श्रृंगार चित्रण की श्लीलता-अश्लीलता के बहाने यहाँ नाटककार ने समसामयिक राजकीय सेंसरशिप की उस ज्वलंत समस्या को उठाया है जिसका शिकार पिछले वर्षो में भारतवर्ष के अनेक प्रतिभावान रचनाकार होते रहते हैं ।"[20]

इस नाटक की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है, इसका सांस्कृतिक परिवेश और ऐतिहासिक वातावरण । लेखक ने उस काल में विशेष रूप से प्रचलित पेड़-पौधों, फूलों, आभूषणों, वाद्य-यंत्रों, अपशकुनों, कवि-प्रसिद्धियों, उत्सवों, रीति-रिवाजो तथा पूर्ववर्ती एवं समकालीन लेखकों के नामोंउद्धरणों आदि का समुचित प्रयोग किया है, तत्कालीन परिवेश और वातावरण को चित्रित करने में ।

छोटे सैयद बड़े सैयद :-

'आठवाँ सर्ग' के बाद 1981 ई० में ' छोटे सैयद बड़े सैयद ' प्रकाशित हुआ । यह एक विराट ऐतिहासिक फलक पर जटिल मानवीय स्वाभाव एवं नियति को समझने-

समझाने का नाटक है । इसकी पहली प्रस्तुति राष्ट्रीय नाट्य रंग-मंडल द्वारा रवीन्द्र भवन के ‘ मेघदूत ’ प्रेक्षागृह में नवम्बर 1980 में हुई । इसमें मुगल सम्राट मुहम्मदशाह के समय की अस्थिर, घृणित, स्वार्थ प्रेरित और कुटिल राजनीतिक गतिविधियों के माध्यम से आधुनिक राजनीतिक अस्थिरता और स्वार्थपरता की ओर संकेत किया गया है, न कि मध्यकालीन इतिहास का तथाकथित वर्णन किया गया है । सुरेन्द्र वर्मा का यह नाटक ‘ छोटे सैयद बड़े सैयद ’ किसी समय विशेष का ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं है, बल्कि इतिहास को, आधुनिक चेतना के धरातल पर मूल्यांकन करने का सफल रचनात्मक प्रयास है । इसमें समसामयिक यथार्थ को ऐतिहासिक स्थितियों और पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है नाटककार ने । आज की एक बड़ी समस्या है रिश्वत की, जिस पर इस नाटक में विस्तार से प्रकाश डाला गया है । रिश्वतखोरी की इस समस्या को हम ‘यूशुफ’ और रतनचंद के प्रसंग में देख सकते हैं । दो साल की बेकारी के बाद ‘यूशुफ’ को नौकरी का हुक्मनामा मिलता है, लेकिन रतनचंद इसके लिए उससे एक सौ सिक्के माँगता है । बेरोजगार होने के कारन उसके पास पैसे नहीं होते हैं । इस बात पर रतनचंद कहता है-“ देख चिड़ी के गुलाम । यह हुक्मनामा यहाँ छह महीने से दबा था । अगर दस लम्हों के अन्दर तू ने एक सौ सिक्के पेश नहीं किये, तो कम-अज-कम एक साल के वास्ते दफ़न हो जाएगा ।”[21] यहाँ रतनचंद के माध्यम से आधुनिक काल के रिश्वतखोर सरकारी कर्मचारी का यथार्थ चित्रण हुआ है, साथ-साथ आज के बेरोजगार युवक की दयनीय स्थिति को यूशुफ के चरित्र द्वारा चित्रित किया गया है।

यह इकतीस दृश्यों का नाटक है । इसका कार्यव्यापार दिल्ली, सलीमगढ़, पटना तथा जोधपुर में बंटा हुआ है । इसमें लगभग अस्सी पात्र है जिसमें ‘अब्दुल्ला खां’(बड़े सैयद) और उनके छोटे भाई ‘हुसैन अली’(छोटे सैयद) प्रमुख पात्र हैं । इस नाटक की भाषा उर्दू-फारसी मिश्रित है तथा इसमें तत्कालीन स्थिति का यथार्थ चित्रण के लिए बहुत-से गीतों का सहारा भी लिया गया है । यह नाटक “ किसी समय विशेष का ऐतिहासिक चित्रण मात्र ही नहीं है, बल्कि इतिहास का आधुनिक चेतना के धरातल पर मूल्यांकन करने के साथ-साथ समसामयिक यथार्थ को ऐतिहासिक स्थितियों और पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करने का एक सशक्त प्रयास भी है । वस्तुतः यह मानवीय स्थितियों, आकांक्षाओं और दुर्बलताओं का नाटक है ।”[22] प्रसिद्ध नाट्य-निर्देशक ब० द० कारन्त का उपर्युक्त कथन इस नाटक के सन्दर्भ में बहुत सही है- “इस नाटक में वर्मा जी ने अपनी स्त्री-पुरुष संबंधों के विश्लेषण की परिचित भूमि से बाहर आकर व्यापक जीवन-सन्दर्भों का साक्षात्कार किया है ।”[23]

एक दूनी एक :-

‘एक दूनी एक’ 1987 ई० में प्रकाशित वर्मा जी का ऐसा नाटक है जिसमें न ही कोई प्राचीन ऐतिहासिक पात्र, जिसके माध्यम से कुछ कहा गया हो । यह नाटक आधुनिक भारतीय उच्चमध्यवर्गीय परिवार में स्त्री-पुरुष के यौन संबंधों पर केन्द्रित है । ‘एक दूनी एक’ का पहला प्रदर्शन श्रीराम सेंटर थिएटर रिपर्टरी, नयी दिल्ली द्वारा श्री राजिंदर नाथ के निर्देशन में अक्टूबर 1985 में हुआ । यह स्त्री-पुरुष संबंधों का जटिल स्वरूप प्रस्तुत करता है । इसमें कथानक का महत्त्व नहीं है, मुख्य है इसके

पात्र, उनका द्वंद्व और उनकी स्थितियाँ। इसमें प्रत्यक्ष रूप से केवल दो पात्र हैं- एक आदमी और एक औरत। इन दोनों के माध्यम से स्त्री-पुरुष संबंधों की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति हुई है। स्त्री-पुरुष के विवाहपूर्ण, विवाहेत्तर प्रेम सम्बन्ध, अनिच्छित विवाह तथा विवाह के प्रति अनास्था, यौन अतृप्ति और स्वच्छंद कामुकता, प्रेम में अविश्वास तथा प्रेम और यौन संबंधों में व्यावसायिकता का विस्तार से वर्णन किया गया है इस नाटक में। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यह नाटक मात्र यौनाचार, रति संचरण या विवाहेत्तर संबंधों को दर्शाने के लिए लिखा गया है, आज का भावबोध, अखबारों या हमारे दैनिक जीवन की घटनाओं के विवरण को नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने सटीक भाषा में प्रस्तुत किया है। इस नाटक में 'डिटेक्टिव एजेंसियों' के महत्त्व को भी चित्रित किया गया है। आधुनिक युग में 'डिटेक्टिव एजेंसियाँ' सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही दृष्टि से मनुष्य की सहायता करती है। उसके द्वारा जहाँ एक तरफ किसी की गोपनीयता बनी रहती है, वहीं दूसरी तरफ कार्य भी हो जाता है। इसलिए आधुनिक युग में इसके महत्त्व को नाकारा नहीं जा सकता है। हम कह सकते हैं कि इस नाटक में परम्परा से आये मूल्यों के अवमूल्यन से उठी समस्याओं का चित्रण किया गया है। रंगमंचीय व्याकरण की दृष्टि से यह नाटक एक अभिनव प्रयोग है और सिद्धहस्त नाटककार का एक और रंगमंचीय प्रतिमान है।

शकुन्तला की अँगूठी :-

सन् 1990 में प्रकाशित 'शकुन्तला की अंगूठी' नाटक की रचना सुरेन्द्र वर्मा ने कालिदास की कृति 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के आधार पर की है । यह नाटक कालिदास की कालजयी कृति 'अभिज्ञान शाकुन्तल' की समकालीन पुनर्व्याख्या है । इस नाटक के नायक 'कुमार' और नायिका 'कनक' को नाटककार ने 'दुष्यंत' और 'शकुन्तला' के रूप में प्रस्तुत किया है । यहाँ शकुन्तला और दुष्यंत जैसे पौराणिक पात्र को आधुनिक रूप में प्रस्तुत किया गया है । कनक और कुमार नाट्य-संस्थान 'कुछ न कुछ' में काम करते हैं । वे 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक की प्रस्तुति के लिए पूर्वाभ्यास करते हैं । पूर्वाभ्यास के दौरान 'शकुन्तला' का अभिनय करने वाली कनक और 'दुष्यंत' का अभिनय करने वाले कुमार में प्रेम हो जाता है । यहाँ शकुन्तला के रूप में कनक एक आधुनिक युवती है । वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के साथ-साथ मानसिक रूप से स्वतंत्र भी है । वह अपने फैसले स्वयं लेती है । कालिदास की "शकुन्तला के किरदार की कुंजी है- कोमलता और विश्वास"[24] लेकिन सुरेन्द्र वर्मा की 'शकुन्तला' किसी पर विश्वास नहीं करती । कालिदास की 'शकुन्तला' की तरह आधुनिक 'शकुन्तला'(कनक) न तो अपने आप को भाग्य या नियति के सहारे छोड़ती है और न ही आधुनिक 'दुष्यंत'(कुमार) द्वारा 'करियर' बनाने के लिए अमेरिका चले जाने पर, उसके आने का इंतजार करती है, बल्कि उसे अपने प्रेम से मुक्त करते हुए दूसरे पुरुष से शादी कर लेती है । 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में प्रेम की चरम परिणति विवाह था, जबकि 'शकुन्तला की अँगूठी' में शारीरिक सम्बन्ध ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस नाटक में सुरेन्द्र वर्मा ने आधुनिक युवा-युवतियों के प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण को अपने यथार्थ रूप में चित्रित किया है । आधुनिक युग के युवकों का प्रेम एकनिष्ठ नहीं है, उनके लिए प्रेम का मतलब सिर्फ शारीरिक सम्बन्ध होता है । सुरेन्द्र वर्मा इस नाटक के माध्यम से यह भी बताना चाहते हैं कि आधुनिक युवकों की दृष्टि में विवाहपूर्व यौन सम्बन्ध स्थापित करना न तो अनैतिक है और न ही उन्हें इस पर पश्चाताप होता है, लेकिन ये शादी जैसी जिम्मेदारियों से भागते अवश्य हैं । नाटककार ने इस नाटक में शहर और गाँव के पति-पत्नी सम्बन्ध पर तुलनात्मक प्रकाश भी डाला है । आधुनिक युग में शहर में निम्नमध्यवर्गीय परिवार में पति-पत्नी का सम्बन्ध इतना तनावपूर्ण हो गया है कि लड़ाई-झगड़ा आम बात हो गयी है । नाटककार ने इस बात को मुर्गा-मुर्गी के प्रतीक के माध्यम से स्पष्ट किया है- " खिड़की के सामने एक झोपड़ी है । उसके पीछे एक दबड़ा है, जिसमें आजकल मुर्गी-मुर्गे का एक जोड़ा रहता है । वे एक-दूसरे को बिल्कुल वैसे ही चोंच मारते हैं, जैसे ह्यूमन मियां बीबी ।"[25]

शहर की तरह गाँव का दाम्पत्य जीवन तनावपूर्ण नहीं होता और न ही पति-पत्नी में लड़ाई-झगड़े होते हैं । नाटककार गाँव के दाम्पत्य जीवन के सुख को कबूतर-कबूतरी के माध्यम से स्पष्ट करते हैं –" वो शहर वालों की तरह कुकड़ू-कूं गरजते हुए एक-दूसरे के खून के प्यासे नहीं, बल्कि अपने पंजों को मुलायम फड़फड़ाहट से अकेलेपन को बर्दास्त के लायक बनाते हैं...यही तो है प्यार का मतलब – जिस घाव से खून टपक रहा हो, उस पर मरहम से भीगा एक फाहा ...।" [26]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इस नाटक के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा ने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' की आधुनिक वातावरण से प्रभावित जरूरतों के अनुसार पुनर्व्याख्या की है।

कैद-ए-हयात :-

उपर्युक्त नाटक के बाद सुरेन्द्र वर्मा का नाटक 'कैद-ए-हयात' आता है । 1993 ई० में प्रकाशित यह नाटक उर्दू के प्रख्यात शायर 'मिर्जा ग़ालिब' के जीवन पर आधारित है, परन्तु ग़ालिब को न तो ऐतिहासिक पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है न उनके कृतित्व का साहित्यिक मूल्यांकनकिया गया है और न ही उन्हें इतिहास के क्षेत्र के युग-पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है । " यह ग़ालिब के जीवन का दस्तावेजी नाट्यालेख नहीं है, बल्कि वे यहाँ एक प्रतीक की हैसियत से मौजूद हैं... सुरेन्द्र वर्मा वास्तव में हमें ग़ालिब के जीवन सन्दर्भों के सहारे रचनाकार के उन्हीं तनावों के रू-ब-रू ले जाते हैं और हम देखते हैं कि रचनाकार के युग परिवेश को ही नहीं, उसके सामाजिक, पारिवारिक और बेहद निजी संसार को भी हमारे सामने खोलता जा रहा है ।"[27] ग़ालिब अपने निजी जीवन में आर्थिक संकट से तो परेशान थे, साथ-साथ आलोचकों व विरोधियों से भी परेशान थे । इसलिए उनकी प्रेमिका 'कतिबा' जब उनकी शायरी की तारीफ़ करती है तो वे तारीफ़ सहन नही कर पाते हैं और अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं – " ...मैं लाजबाब शायर हूँ – इस बात को सिर्फ दो लोग तस्लीम करते हैं...(अपनी ओर इशारा करके) मैं और (उसकी ओर इशारा करके) तुम ।...बाकी सारा जमाना मुझ पर उँगलियाँ उठाता है । दिक्क़त पसंदी और

मौहमलागोई के इल्जाम लगाता है ।...कभी चैन पाता हूँ मैं ? कभी सुकून मिलता है मुझे ?”[28] ग़ालिब के इस कथन से हम रचनाकार की मानसिक पीड़ा का अनुमान सहज रूप से लगा सकते हैं । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस नाटक में ग़ालिब के माध्यम से समसामयिक तनावों के परिवेश में साहित्यकार के आंतरिक संघर्ष को उजागर किया गया है कि किस प्रकार एक साहित्यकार निजी, सामाजिक और सियासी उलझनों के साथ-साथ आलोचकों और विरोधियों के व्यंग्य वाणों का सामना करते हुए अपना सृजनात्मक कर्म करते हैं।

‘कैद-ए-हयात’ के बाद सन् 2010 में सुरेन्द्र वर्मा का नाटक ‘रति का कंगन’ प्रकाशित हुआ । इस नाटक में स्वार्थपूर्ण स्त्री-पुरुष संबंधों को शैक्षणिक संस्थानों की दूषित राजनीति के आलोक में प्रस्तुत किया गया है । इन नाटकों के अलावा सुरेन्द्र वर्मा ने कई एकांकियां भी लिखी हैं, जो 1976 ई० में ‘नींद क्यों रात भर नहीं आती’ शीर्षक से पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ । यह पुस्तक छः बहुचर्चित एकांकियों का संग्रह है, जिसमें ‘शनिवार के दो बजे’, ‘वे नाक से बोलते हैं’, ‘हरी घास पर घंटे भर’, ‘मरणोपरांत’, ‘हिंडोलइंगुर’, तथा ‘नींद क्यों रात भर नहीं आती’ संकलित है । इन एकांकियों में मध्यवर्गीय नैतिकता तथा स्त्री-पुरुष संबंधों के बदलते स्वरूप एवं मूल्यों का विश्लेषण किया गया है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुरेन्द्र वर्मा एक ऐसे नाटककार हैं जिन्होंने मिथकीय कथावस्तु और ऐतिहासिक पात्र के माध्यम से आधुनिक जीवन की समस्याओं, विकट परिस्थितियों, स्त्री-पुरुष संबंधों, लेखकीय अभिव्यक्ति की

स्वतंत्रता, नारी के बदलते स्वरूप, शिक्षण-संस्थानों के अन्दर फैली गन्दी राजनीति आदि का यथार्थ चित्रण किया है ।

उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा :-

सुरेन्द्र वर्मा प्रतिष्ठित नाटककार के साथ-साथ एक अच्छे कथाकार भी हैं । सफल नाटकों की रचना के बाद उन्होंने उपन्यास लेखन का कार्य भी किया । उन्होंने चार उपन्यास लिखे हैं – 'अंधेरे से परे', 'मुझे चाँद चाहिए', 'दो मुर्दो के लिए गुलदस्ता', तथा 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' ।

अंधेरे से परे :-

उपन्यास के क्षेत्र में इनका पदार्पण 1980 ई० में 'अंधेरे से परे' के प्रकाशन से हुआ । यह इनका पहला उपन्यास है । यह उपन्यास सामाजिक समस्याओं, पारिवारिक विघटन, बेरोजगारी, मध्यवर्गीय परिवार के सामने उत्पन्न आर्थिक संकट, इस संकट से परिवार में होने वाले लड़ाई-झगड़े और तनाव तथा उन झगड़ो का घर के बच्चों पर पड़ने वाला प्रभाव आदि को ध्यान में रखकर लिखा गया है । इस उपन्यास की शुरुआत होती है मिसेज माथुर के परिवार से । इनके परिवार के माध्यम से ही आधुनिक युग के भिन्न-भिन्न परिस्थितियों और इन परिस्थितियों से प्रभावित व्यक्ति के मनोवृतियों को दिखाया गया है । इस उपन्यास में मिसेज माथुर के परिवार के माध्यम से आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार के टूटने-बिखरने की स्थिति का चित्रण किया गया है जिसके पीछे का बड़ा कारण है पारिवारिक मूल्यों का

विघटन और उपभोगवादी संस्कृति । मिसेज माथुर का एक बीटा है गुलशन ,जो बेरोजगार है । मिसेज माथुर की एक बेटी है बिन्दो, जो अपने अपती और बेटे के साथ अपनी माँ के घर रहती है । गुलशन इस उपन्यास का नायक है । उसके माध्यम से लेखक ने बेरोजगारी से उत्पन्न उस मनःस्थिति का मार्मिक चित्रण किया है जिसके कारण कथानायक 'गुलशन' आत्महत्या की ओर अग्रसर होता है । साथ ही बेरोजगारी खत्म होने और आर्थिक स्थिति ठीक होने के बाद के उस मनःस्थिति को भी लेखक रेखांकित करते हैं जिससे व्यक्ति की जिजीविषा और जीवन के प्रति आग्रह बढ़ जाता है । गुलशन की बहन बिन्दो के माध्यम से आधुनिक नारी का चित्रण हुआ है जो अपने पति को छोड़कर दूसरे मनुष्य के साथ रहने लगती है । इसमें विज्ञापन, मॉडल, फैशन, उपभोग्तावादी संस्कृति आदि उत्तर औपनिवेशिक-प्रवृत्तियाँ विद्यमान है । परंपरा से स्वीकृत पारिवारिक संरचना को तोड़ कर अपनी मर्जी की स्वतंत्र परिवार रूपायित करने में सामयिक समाज उत्सुक दिखाई पड़ते हैं। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में उत्तर औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य में उपजी पारिवारिक जीवन के नए स्वरूप को अभिव्यक्त किया है ।

मुझे चाँद चाहिए :-

उपर्युक्त उपन्यास के बाद 1993 ई० में सुरेन्द्र वर्मा का बेहद प्रसिद्ध और उत्तर-आधुनिक कहा जाने वाला उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' प्रकाशित हुआ । सुरेन्द्र वर्मा के इस बहुचर्चित उपन्यास का कैनवास इतना विशाल है कि इसमें शाहजहाँपुर के रूढ़िग्रस्त जीवन से लेकर दिल्ली, मुंबई जैसे महानगरीय जीवन का

यथार्थ बड़ी ही बारीकी के साथ रेखांकित हुआ है । इस उपन्यास की कथावस्तु दो भागों में विभाजित है – पहली उपन्यास की मूल कथा तथा दूसरी सामानांतर कथा। मूल कथा के अंतर्गत उपन्यास के केन्द्रीय पात्र 'वर्षा वशिष्ठ' के जीवन से जुड़ी कथा है तथा सामानांतर कथा के अंतर्गत मुख्य कथा को आगे बढ़ाने के अनेक प्रसंगों को लिया गया है । उपन्यास के केंद्र में एक मध्यवर्गीय लड़की वर्षा वशिष्ठ है, जिसकी महत्त्वाकांक्षा अभिनेत्री के रूप में प्रतिष्ठित होने की है । अपनी इस महत्त्वाकांक्षा को वह परिवार के विरोध के बाद भी परिवार व समाज से संघर्ष करते हुए प्राप्त कर लेती है, इसीलिए कहा जाता है कि " 'मुझे चाँद चाहिए' एक महत्त्वाकांक्षी कलाकार की संघर्ष-गाथा है ।"[29] इस उपन्यास में वर्षा के पिता और उसके परिवार के माध्यम से लेखक मध्यवर्ग के उस मानसिकता का चित्रण करते हैं जिसमें नाटक और रंगमंच को आज भी उपेक्षणीय समझा जाता है । इसमें कलाकार के व्यक्तिगत और कलात्मक जीवन में आने वाली कठिनाइयों तथा उस कठिनाइयों के कारन उत्पन्न भिन्न-भिन्न मनःस्थितियों को वर्षा और हर्ष के माध्यम से चित्रित किया गया है । वर्षा वशिष्ठ के जीवन को चित्रित करते हुए रंगमंच और सिनेमा की यथास्थिति से भी परिचित कराया गया है । हिंदी का रंगमंच किस तरह अपने कठिन दौर से गुजर रहा है और हिंदी सिनेमा किस तरह व्यावसायिकता के दौर में कला-विरोधी होता जा रहा है इसका भी यथार्थ चित्रण किया गया है इस उपन्यास में । इसी को देखकर प्रसिद्ध समीक्षक 'रवीन्द्र त्रिपाठी' ने लिखा है – " उपन्यास जितना वर्षा की जीवनी है उतना ही रंगमंच और सिनेमा की अंतर्कथाओं और अंतर्संबंधों का रूपक ।"[30]

“ ‘मुझे चाँद चाहिए’ उपन्यास कथा-रस के लिए ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण है, एक अल्पपरिचित कलाजगत के आंतरिक जीवन-संघर्ष, प्रेम, यातना, आतंक, आसक्ति, चुनौती, प्रतिस्पर्धा, द्वंद्व के मिले-जुले अनुभव चित्रण के लिए ।”[31] इस अनुभव को चित्रित करने के लिए सुरेन्द्र वर्मा ने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह इस अनुभव को पूरी समग्रता में अभिव्यक्त करने में पूरी तरह सक्षम साबित हुई है । सुरेन्द्र वर्मा और उनके उपन्यास की इन्हीं खूबियों के सन्दर्भ में प्रसिद्ध समीक्षक श्याम कश्यप कहते हैं –“ जीवन-यथार्थ की गहरी सूझ-बूझ के साथ कलात्मक चित्रांकन में सूक्ष्म से सूक्ष्म ‘डिटेल्स’ का सटीक वर्णन और भाषा से लेकर गद्य-शैली तक हिंदी को लगभग एक नया संस्कार देने की उनकी कोशिश, सर्वोपरि सुरेन्द्र वर्मा की सकारात्मक जीवन-दृष्टि उन्हें निर्विवाद रूप से एक बड़ा लेखक एवं सक्षम कलाकार साबित करती है । ”[32] इस प्रकार हम देखते हैं कि सुरेन्द्र वर्मा की प्रसिद्धि में ‘मुझे चाँद चाहिए’ उपन्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता :-

‘मुझे चाँद चाहिए’ के बाद इनका उपन्यास ‘दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता’ आया, जो 1998 ई० में प्रकाशित हुआ । इस उपन्यास में दिल्ली के एक शोध छात्र ‘नील माथुर’ और मथुरा के एक चौकीदार ‘भोला’ के बहाने मुंबई के भयानक अपराध और कुत्सित सेक्स की दुनिया का चित्रण किया गया है । इसमें महानगरीय जीवन के यथार्थबोध को कलात्मक ढंग से पेश किया गया है । कथानायक नील माथुर नौकरी की तलाश में मुंबई आता है परन्तु वह वहाँ केवल एक पुरुष-वेश्या

बन कर रह जाता है और अंत में मारा जाता है । इसमें मुंबई जैसे महानगर में चलने वाली आपराधिक गतिविधियों के विस्तृत विवरण के साथ-साथ काम-संबंधों का सूक्ष्म विवेचन-विश्लेषण भी किया गया है, जिसे देखकर कुछ विद्वान इसे कलात्मक संयम से रहित और शुद्ध व्यावसायिक प्रयोजन से लिखा गया उपन्यास मानते हैं – " उपन्यास में अपराध की भयानक दुनिया के साथ समृद्ध नारियों के अतृप्त सेक्स जीवन की तुष्टि के निमित्त पुरुष-वेश्या के सेक्स-प्रसंगों के रंगीन चित्र खींचे गये हैं, वे यदि किसी हद तक सच भी हो, तो सामाजिक प्रतिबद्धता और कलात्मक संयम से रहित इस उपन्यास को लिखकर लेखक ने कौन-सी रचनात्मक उपलब्धि हासिल की है, यह समझ से परे है । निश्चय ही यह उपन्यास उपभोक्ता संस्कृति के दबाव में शुद्ध व्यावसायिक प्रयोजन से लिखा गया है ।"[33] यह मत आदर्शवादी है, जो कि पूरी तरह सही नहीं है, क्योंकि साहित्यकार का दायित्त्व होता है तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करना, चाहे वह स्थिति अच्छी हो या बुरी । अपने इसी गुण के कारण तो साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है । यह उपन्यास अपने आप में अन्य उपन्यासों से पूरी तरह अलग और विशिष्ट है । आज तक जहाँ स्त्री-वेश्याओं पर केन्द्रित उपन्यास लिखे जाते रहे, वहीं इस उपन्यास में एक पुरुष-वेश्या के दुखद मनःस्थिति तथा दुर्गति का चित्रण हुआ है । इस उपन्यास में हिन्दू-मुस्लिम एकता को ध्यान में रखते हुए उनके बीच के सौहार्द को चित्रित किया गया है साथ ही सामाजिक-आर्थिक समस्याओं, निर्देशक द्वारा शोधार्थी का शोषण तथा दांपत्य जीवन में एकरसता आदि समस्याओं को बखूबी से उभरा गया है । अतः हम कह सकते हैं कि यह उपन्यास महानगरीय जीवन के उस अव्यक्त पक्ष को

व्यक्त करने वाला उपन्यास है, जिसके बारे में हम बात नहीं करते या बात करना पसंद नही करते हैं ।

काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से :-

उपर्युक्त उपन्यास के बाद 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' आया, जो सन् 2010 में प्रकाशित हुआ । सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों की अंतर्वस्तु और पात्रों की तरह इस उपन्यास की कथावस्तु और पात्र भी ऐतिहासिक है । ऐतिहासिक परिप्रेक्ष में लिखा गया यह उपन्यास सुरेन्द्र वर्मा का पहला और अकेला ऐतिहासिक उपन्यास है । इस उपन्यास के प्रमुख पात्र 'कालिदास' प्रसिद्ध ऐतिहासिक पात्र हैं । यह उपन्यास कालिदास के जीवन पर आधारित है, जिसमें एक कलाकार के अंतर्द्वंद्व को, उसकी रचना प्रक्रिया को, सत्ता तथा प्रेम को आधुनिक परिप्रेक्ष में देखा गया है । इस उपन्यास के पात्र कालिदास को आधुनिक रूप में प्रस्तुत किया गया है । इस उपन्यास में एक कलाकार की कलात्मक महत्त्वाकांक्षा, उस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए किये गये संघर्ष तथा उस संघर्ष के परिणामस्वरूप मिली सफलता का चित्रण किया गया है । कालिदास अपनी इस महत्त्वाकांक्षा के कारण कलाकार रूप में तो सफल हो जाते हैं परन्तु व्यक्ति रूप में असफल ही होते हैं ।

कहानीकार सुरेन्द्र वर्मा :-

सुरेन्द्र वर्मा प्रतिष्ठित नाटककार और उपन्यासकार के साथ-साथ अच्छे कहानीकार भी हैं । इन्होंने कई कहानियाँ लिखी, जो 'कितना सुन्दर जोड़ा' और 'प्यार की बातें तथा अन्य कहानियाँ' नामक कहानी-संग्रह में संकलित है । 'प्यार की

बातें तथा अन्य कहानियाँ' आठ कहानियों का संग्रह है, जिसमें 'कॉमिक', 'एक हफ्ता', 'सहारा', 'डबल बेड', 'काउंटर', 'सलाहकार', 'पुष्पशय्या', तथा 'प्यार की बातें' कहानी संगृहीत है । ये कहानियाँ समकालीन परिवेश को ध्यान में रखकर लिखी गयी है । सुरेन्द्र वर्मा की कहानियों को 'नयी कहानी' के अंतर्गत रखा जा सकता है । इनकी कहानियों में अकेलापन, बदलते पारिवारिक सम्बन्ध, नई-पुरानी पीढ़ी के बीच की दरार, सामाजिक एवं मानसिक विसंगतियाँ, कुंठित मनोवृतियाँ आदि की अभिव्यक्ति हुई है ।

व्यंगकार और समीक्षक :-

'नाटक', 'उपन्यास' और 'कहानी' लेखन के साथ-साथ सुरेन्द्र वर्मा ने 'व्यंग्य' भी लिखा है और समीक्षा भी की है । ये एक अच्छे व्यंग्यकार हैं । इनका व्यंग्य-संग्रह 'जहाँ बारिश न हो' नाम से 1980 ई० में प्रकाशित हुआ । जिसमें 'एडवांस बुकिंग', 'रेलवे टाइमटेबुल', रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ बारिश न हो', 'मत लौटाओ मेरा बचपन', 'हिसाब की कॉपी', 'बातचीत की शुरुआत' आदि व्यंग्य संग्रहित है । ये व्यंग्य लेख समकालीन जीवन के बहुआयामी विसंगतियों और विद्रूपताओं की अभिव्यक्ति है । इनको पढने से पता चलता है कि ये सूक्ष्मता एवं गहराई के साथ किये गये शोध-संशोधन का परिणाम है । सुरेन्द्र वर्मा ने मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध कवि 'सुभाष दशोत्तर' की कविताओं का मूल्यांकन करते हुए 'सुभाष दशोत्तर का मूल्यबोध' और 'देवराज के काव्य में मानवतावादी दृष्टि' जैसे लेख

लिखकर अपने समीक्षक व्यक्तित्व को भी प्रमाणित किया है । इनके लेख ‘नटरंग’, ‘आजकल’ जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुरेन्द्र वर्मा ने साहित्य की विभिन्न विधाओं को अपने लेखन से प्रभावित किया है चाहे वह विधा उपन्यास हो, नाटक हो, कहानी हो, व्यंग्य हो या समीक्षा । सुरेन्द्र वर्मा के रचनात्मक विकास को हम विभिन्न विधाओं में रचित उनकी रचनाओं के चरित्रों के माध्यम से देख सकते हैं । ‘सेतुबंध’ की प्रभावती के चरित्र का विकास, ‘सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक’ की शीलवती के रूप में होते हुए अंततः ‘मुझे चाँद चाहिए’ की वर्षा वशिष्ठ के रूप में अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँचता है । निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि सुरेन्द्र वर्मा ने अपनी रचनाओं में आधुनिक युग में बदलते मानवीय संबंध के भिन्न-भिन्न रूपों, परिस्थितियों तथा आयामों को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों के साथ प्रस्तुत किया है ।

सन्दर्भ

1. नरेन्द्र अरुण, भारतेंदु हरिश्चन्द्र के नाटकों में व्यंग्य, पृ० सं० – 33

2. जयदेव तनेजा, समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच, पृ० सं० – 164

3. डॉ० गिरीश रस्तोगी, समकालीन हिंदी नाटक पृ० सं० – 61

4. इंद्रनाथ मदान, हिंदी नाटक और रंगमंच : पहचान और परख, पृ०सं० - 154-155

5. रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, पृ० सं० – 466

6. सुरेन्द्र वर्मा, तीन नाटक, पृ० सं० – 128

7. रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, पृ० सं० – 466

8. सुरेन्द्र वर्मा, तीन नाटक, पृ० सं० – 29

9. वही, पृ० सं० – 34

10. वही, पृ० सं० – 38

11. वही, पृ० सं० – 59

12. वही, पृ० सं० – 61

13. वही, पृ० सं० – 65

14. जयदेव तनेजा, वही, पृ० सं० – 16

15. सुरेन्द्र वर्मा, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, पृ०सं० – 52

16. गिरीश रस्तोगी, समकालीन हिंदी नाटक की संघर्ष चेतना, पृ० सं० – 85

17. सुरेन्द्र वर्मा, आठवाँ सर्ग, पृ० सं० – 38

18. वही, पृ० सं० – 39

19. वही, पृ० सं० – 54-55

20. जयदेव तनेजा, वही, पृ० सं० – 19

21. सुरेन्द्र वर्मा, छोटे सैयद बड़े सैयद, पृ० सं० – 75

22. जयदेव तनेजा, हिंदी रंगकर्म : दशा और दिशा, पृ० सं० – 13

23. रामचंद्र तिवारी, वही, पृ० सं० – 467

24. सुरेन्द्र वर्मा, शकुंतला की अँगूठी, पृ० सं० – 35

25. वही, पृ० सं० – 48

26. वही, पृ० सं० – 75-76

27. सुरेन्द्र वर्मा, कैद-ए-हयात, पृ० सं० – फ्लैप पृष्ठ

28. वही, पृ० सं० – 48-49

29. रामचंद्र तिवारी, वही, पृ० सं० – 303

30. राजेंद्र यादव, हंस (पत्रिका) , पृ० सं० – 84

31. वही, पृ० सं० – 76

32. रामचंद्र तिवारी,वही, पृ० सं० – 304

33. वही, पृ० सं० – 304

द्वितीय अध्याय

‘काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से’

उपन्यास की कथावस्तु का विश्लेषण

किसी रचनाकार के कथा-साहित्य के महत्त्व को उद्घाटित करने के लिए तथा उसका विश्लेषण करने के लिए उस कथा साहित्य का वस्तु और शिल्प की दृष्टि से मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है । यहाँ वस्तु से तात्पर्य कथावस्तु से है । चूँकि उपन्यास भी कथा-साहित्य के अंतर्गत आता है, इसीलिए किसी उपन्यास का विश्लेषण करने के लिए उस उपन्यास की कथावस्तु का विश्लेषण करना आवश्यक है । ‘कथावस्तु’ अंग्रेजी शब्द ‘प्लाट’ का हिंदी पर्याय है । कथावस्तु के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपना मत दिया है । कोई उसे घटनाओं की श्रृंखला कहते हैं, कोई घटनाओं का काल क्रमानुसार वर्णन, कोई उसे उपन्यास का ढाँचा कहते हैं, तो कोई उपन्यास का प्राणतत्व कहते हैं । पाश्चात्य विद्वान तथा उपन्यास के सुविख्यात व्याख्याकार ई० एम० फार्स्टर इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं – “ यह घटनाओं का वह काल क्रमानुसार वर्णन है जिसमें कार्य-कारण सम्बन्ध पर विशेष बल रहता है ।”[1] इसी तरह एक और पाश्चात्य विद्वान अल्वर्ट कुक लिखते हैं – “ कथा वस्तु एक खोज है । यह समस्त चरित्रों के गूढ़ जीवन के उपयुक्त केन्द्रों का अन्वेषण करता है।”[2] ग्रीन वुड के अनुसार – “ कथावस्तु लेखक के लिए वह धारा है जिसके द्वारा वह अपनी गहराई में डूबकर महत्त्वपूर्ण विषय की बड़ी और चमकती हुए मछली पकड़ता है ।”[3]

उपन्यास में कथावस्तु के महत्त्व को भारतीय विद्वानों ने भी स्वीकार किया और उसको अपने ढंग से व्याख्यायित-विश्लेषित भी किया। डॉ० शम्भुनाथ टंडन कथावस्तु को उपन्यास का ढाँचा मानते हुए कहते हैं –" कथानक ही वह वस्तु होती है, जिस पर उपन्यास का भवन खड़ा होता है । इसीलिए इसे उपन्यास का ढाँचा माना जाता है । उपन्यास के अन्य तत्त्व उपकरणों की भाँति कार्य करते है । इस दृष्टि से इन सब तत्वों, प्रधानतः कथानक के योग से ही उपन्यास की रचना होती है ।"[4] इसी तरह डॉ० सरोजनी त्रिपाठी कथावस्तु को उपन्यास का प्राण तत्त्व मानते हुए कहती हैं कि " कथावस्तु उपन्यास का प्राण तत्त्व है । जिस प्रकार यह जानना कठिन है कि प्राण शरीर के किस अवयव विशेष में अवस्थित है, उसी प्रकार उपन्यास में कथावस्तु की ओर संकेत करना दुष्कर है । किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि कथावस्तु सम्पूर्ण उपन्यास में व्याप्त रहती है । फलतः कथावस्तु घटनाओं का संगठन मात्र न होकर घटनाओं के मध्य वह सूत्र विशेष है जो घटनाओं का सुव्यवस्थित संयोजन करके औपन्यासिक सृष्टि का मूल आधार बनता है ।"[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कथावस्तु उपन्यास का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है । अन्य तत्त्व तो कथावस्तु की प्रकृति के अनुकूल ही स्वरूप ग्रहण कर संचरित होते हैं । भाव प्रधान, विचार प्रधान, और वातावरण प्रधान कही जाने वाली रचनाओं में प्रमुखता भले ही अन्य तत्वों की रहती है परन्तु कथावस्तु का सर्वथा लोप नहीं हो पाता है । कथावस्तु प्राणरूप में सदा इन तत्वों में संचरित होता रहता है । कथासूत्र ही वह माध्यम है जिसके द्वारा विभिन्न चरित्रों या स्थितियों में संतुलनपूर्ण

सम्बद्धता स्थापित होती है । घटनाओं के संयोजन, चरित्रों की सृष्टि, वातावरण निर्माण तथा भाव या विचार के उद्बोधन में कथावस्तु ही मूल तत्त्व के रूप में प्रेरणा देता है । अतः हम कह सकते हैं कि कथावस्तु सचमुच उपन्यास का प्राण तत्त्व है । चूँकि 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' एक उपन्यास है इसलिए इसका आलोचनात्मक अध्ययन करने के लिए इसकी कथावस्तु का विश्लेषण आवश्यक है । इसीलिए इस अध्याय में हम 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' उपन्यास की कथावस्तु का विश्लेषण करेंगे ।

'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' उपन्यास प्रसिद्ध नाटककार और उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा का उपन्यास है जो सन् 2010 में प्रकाशित हुआ था । यह उपन्यास संस्कृत के श्रेष्ठ कवि और नाटककार 'कालिदास' के जीवन पर आधारित है । इसमें कालिदास के रचना-प्रक्रिया के शुरूआती दिनों से लेकर उनके एक महत्त्वपूर्ण कवि और प्रसिद्ध नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित होने तक की कथा है । इस उपन्यास के केंद्र में सुरेन्द्र वर्मा ने ऐतिहासिक पात्र 'कालिदास' को रखा है तथा उनके तत्कालीन परिवेश का चित्रण भी किया है, परन्तु जयशंकर प्रसाद की तरह न तो वे इतिहास और ऐतिहासिक पात्र के माध्यम से अतीत का गौरव-गान करते हैं और न ही उनका लक्ष्य सांस्कृतिक पुनर्जागरण है । इस उपन्यास से पहले भी सुरेन्द्र वर्मा ने अपने कई नाटकों, 'द्रोपदी', 'सेतुबंध', 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक',' आठवाँ सर्ग', 'शकुन्तला की अँगूठी', 'कैद-ए-हयात' आदि में इतिहास को आधार बनाते हुए आधुनिक जीवन की अनेक समस्याओं, परिस्थितियों एवं बदलते मूल्यों को चित्रित किया है । यह उपन्यास भी 'कालिदास' जैसे ऐतिहासिक

पात्र एवं उनके जीवन पर आधारित है, परन्तु इस उपन्यास में चित्रित 'कालिदास' एक आधुनिक मनुष्य हैं जिनका जीवन विभिन्न समस्याओं और द्वंदों से घिरा हुआ है। पूरे उपन्यास में कालिदास 'भावात्मक' और 'कलात्मक' द्वंद्व की स्थिति में रहते हैं।

यह एक विस्तृत (बड़ा) उपन्यास तो है ही, साथ ही इसे 95 दृश्यों का लम्बा नाटक भी कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें नाटकीयता के तत्त्व भी मौजूद हैं, जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि यह एक साथ उपन्यास भी है और नाटक भी। इस उपन्यास को पाँच खंडो में विभाजित किया गया है। इसमें पात्रों की संख्या बहुत है, जिसमें कालिदास, मुग्धा और राजकुमारी प्रियंगुमंजरी प्रमुख हैं बाकी मातुल, सुन्दरदास, कीर्तिभट्ट, विद्याभास्कर, सम्राट चन्द्रगुप्त, आलोकवर्धन, धवलकीर्ति, श्वेतांग आदि गौण पात्र हैं। कालिदास पर केन्द्रित इस उपन्यास के केंद्र में दो बातें प्रमुख हैं, एक तो उनका 'कलात्मक भावबोध एवं कलात्मक आकांक्षाएँ', जिसके अंतर्गत इनकी रचना-प्रक्रिया और उसका विकास आता है, तथा दूसरा उनका व्यक्तिगत जीवन।

इस उपन्यास के पहले खंड में 27 दृश्य है, जिसमें कालिदास के ग्राम्य जीवन और उस ग्राम्य जीवन में उनके कवि रूप की उपेक्षा, नियमित वृत्ति का दबाव, मुग्धा से शादी का दबाव और रचना-प्रक्रिया में आने वाले अवरोधों के कारण उत्पन्न कलिदास के भिन्न-भिन्न मनःस्थितियों का वर्णन और चित्रण किया गया है। इस उपन्यास की शुरुआत होती है कालिदास की कृति 'ऋतुसंहार' के मुद्रण से, जिसकी पाण्डुलिपि देखकर कालिदास खुश होने के बजाए चिंतालीन हो जाते हैं और उस

रचना की रचना-प्रक्रिया से लेकर पाण्डुलिपि के रूप में तैयार होने तक के तनाव और कष्ट को याद करते हुए तथा उस कृति के भविष्य की चिंता करते हुए मुग्धा से कहते हैं " केवल तुम जानती हो कि इन पंक्तियों के बीच एक और कविता है – तनाव, अंतर्दहन और पीड़ा की । अब हमारे हाथों में है यह पाण्डुलिपि । पर अब इसका होगा क्या ?"[6]

इस प्रकार यहाँ हम देखते हैं कि किसी कृति की रचना के पीछे कलाकार को कितने मानसिक तनाव और कष्ट से गुजरना पड़ता है, क्योंकि सिर्फ अपने अनुभव को अभिव्यक्त कर देने से कोई रचना अच्छी नहीं हो जाती, बल्कि उसके लिए रचनाकार को अपने अनुभव को नया अर्थ देना होता है, उसकी नई व्याख्या करनी होती है और इस नई व्याख्या के लिए नये शब्दों का चयन करना होता है तथा उसे नये रूप में प्रस्तुत करना होता है । इन प्रक्रियाओं से गुजरने के बाद जब 'ऋतुसंहार' कालिदास के हाथ में आता है तो वे उसके भविष्य को लेकर चिंतित हो जाते हैं कि अब इसका क्या होगा ? कालिदास अपनी इस कृति पर लोगों की प्रतिक्रिया जानना चाहते हैं जो कि आधुनिक मनुष्य की प्रवृत्ति है, अपने द्वारा किये गये कार्य का जल्दी से जल्दी परिणाम जानना । इस तरह यहाँ हम ऐतिहासिक पात्र कालिदास का आधुनिक रूप देख सकते हैं । अपनी इसी आधुनिक प्रवृति के कारण कालिदास, विद्याभास्कर को 'ऋतुसंहार की पाण्डुलिपि पढ़ने के लिए देते हैं । विद्याभास्कर एक अध्यापक हैं । वह 'ऋतुसंहार' पढ़ने के बाद उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहते हैं – " यह पद्य प्रकृति को प्रणामांजलि है, मनुष्य के साथ सात्त्विक,

विशिष्ट, और सतत सम्बन्ध के लिए गदगद कृतज्ञता। मैंने अब तक नहीं देखा प्रकृति का ऐसा गहन और सूक्ष्म पर्यवेक्षण, मनुष्य और प्रकृति के संतुलन पर ऐसा तरल, विभोर, और गीतात्मक आनंदोच्छ्वास; जीवन के प्रति ऐसा मोहक और निर्दोष लगाव...जो जीवन से प्रेम करता है, यह कृति गले से लगा लेगा।"[7] साथ ही वे अपने अस्तित्त्व को देखते हुए कहते हैं " यह रचना निश्चित रूप से नयी भूमि तोड़ती है,..लेकिन लघु पाठशाला के लघुतम अध्यापक की मान्यता का क्या मूल्य-।"[8]

यहाँ 'ऋतुसंहार' की महत्ता और विशिष्टता की चर्चा करते हुए लेखक विद्याभास्कर के माध्यम से दो बातों की तरफ इशारा करते हैं। एक तो वे आलोचना का महत्त्व बताते हैं कि आलोचना के बिना किसी कृति का महत्त्व स्थापित नहीं हो सकता, चाहे वह कृति बहुत अच्छी ही क्यों न हो ? यह सही भी है, क्योंकि आलोचना हमें वह दृष्टि देती है जिसके आधार पर हम किसी रचना को, उसके विभिन्न पहलुओं को, आयामों को, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में, उसके अच्छाईयों और बुराइयों को देखते हुए, उसका महत्त्व स्थापित करते हैं। यहाँ दूसरी बात यह दिखाई गई है कि आलोचना करने के लिए आलोचक का प्रतिष्ठित होना जरूरी है। यह मान्यता सही नहीं है। यहाँ आज की उस मानसिकता की ओर संकेत किया गया है जो सिर्फ किसी व्यक्ति का पद और उसकी प्रतिष्ठा देखता है। उसके द्वारा किये गये कार्य के अनुसार उसका मूल्यांकन न करके उसके पद और प्रतिष्ठा के आधार पर व्यक्ति का मूल्यांकन करता है।

विद्याभास्कर से ‘ऋतुसंहार’ के बारे में प्रतिक्रिया जानकर और उसकी बात सुनकर कालिदास ‘ऋतुसंहार’ की पाण्डुलिपि को प्रसिद्ध आलोचक और विक्रम विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष ‘आलोकवर्धन’ के पास उनकी प्रतिक्रिया जानने के लिए भेजते हैं। फिर कुछ दिन बाद कालिदास नीलपुर के रसिक समाज में ‘ऋतुसंहार’ की कुछ पंक्तियों का पाठ करते हैं। जहाँ उनकी रचना में नायक-नायिका न होने, अन्तःसूत्र न होने, आदि कारणों से उनकी रचना को विश्रृंखल और अराजक कह कर उनका अपमान किया जाता है। “ नवोदित कवि...तुम्हारी रचना विश्रृंखल और अराजक है।”[9] रसिक समाज की इस प्रतिक्रिया से कालिदास को कठोर आघात लगता है जिसे लेखक ने निम्न पंक्तियों में वर्णित किया है –“ वर्षा की रात्रि। वन में क्षत-विक्षत दौड़ रहा था कालिदास – बिना पत्तों की झाड़ियों, सूखी लताओं और नागफनी की बाड़ों को छूता, उनसे उलझता, टकराता, डगमगाता, फिसलता...साँसें तीव्र, आँखें लाल...चीत्कार के साथ वह अपने कक्ष में घुसा – पाण्डुलिपि दीवार पर दे मारी। पृष्ठ बिखर कर जहाँ-तहाँ तिरने लगे।”[10] इन पंक्तियों को देखने से हम कवि के उस कष्टपूर्ण और पीड़ादायक स्थिति को समझ सकते है जब उसकी रचना का अपमान किया जाता है।

कुछ दिनों बाद ग्राम में एक नाट्यमंडली आती है। ‘उरूभंगम्’ का मंचन होता है, जिसे देखकर कालिदास नाट्य-रचना की ओर अग्रसर होते हैं। नाट्य-रचना की रूप-रेखा तैयार करने के लिए वे नीलपुर स्नातकोत्तर संस्थान के पुस्तकालय जाते हैं और नाट्यशास्त्र एवं रंगमंच से संबंधित पुस्तक तथा कई नाटकों का अध्ययन करते

हैं । नाट्य-रचना में लीन कालिदास रचना-प्रक्रिया के दौरान कई मानसिक और कलात्मक अवरोधों से सामना करते हुए पुस्तकालय के नियमों का उल्लंघन करते हैं, वह भी एक बार नही, अनेक बार । जिसके कारण उनको जीवनपर्यंत इस पुस्तकालय से प्रतिबंधित किया जाता है । इस प्रसंग से एक तो हमें यह पता चलता है कि रचनाकार अपने रचना-कर्म में इतने लीन रहते हैं कि उसे बाहरी वातावरण का ध्यान ही नहीं रहता । दूसरी बात यह देखने को मिलती है कि पुस्तकालय जैसे संस्थानों में कई ऐसे अनुपयोगी नियम है जिन्हें बदलने की जरूरत है, परन्तु वहाँ के कर्मचारी इस बात पर ध्यान न देकर उन अनुपयोगी नियमों के पालन में अपना समय व्यर्थ करते हैं ।

पुस्तकालय से निकाले जाने पर कालिदास पशुशाला में बैठकर ‘शाकुन्तलम्’ नामक नाट्य-रचना का एक अंक पूरा करते हैं तभी एक गाय उनके लिखे भोजपत्र को खा जाती है जिसे देखकर कालिदास रोते हुए कहते हैं “ कौन कहता है कि संसार में न्याय है ? मेरे सामने लाओ उसे– मैं कहता हूँ डंके की चोट पर कि संसार में नहीं है न्याय- ”[11] यहाँ हम रचनाकार के भावुक हृदय और रचना-प्रक्रिया में आने वाले बाह्य अवरोधों के कारण उत्पन्न रचनाकार की पीड़ा को देख सकते हैं ।

ये तो हुई कालिदास की उपेक्षापूर्ण, अवरोधपूर्ण और तनावपूर्ण कलात्मक जीवन की बात । कालिदास के व्यक्तिगत जीवन में भी कम तनाव और समस्याएँ नहीं है । एक बड़ी समस्या जीविकोपार्जन की है जिसे लेकर कालिदास के मामा मातुल उन्हें दिन-रात ताना देते रहते हैं और रोज-रोज कोई-न-कोई दैनिक वृत्ति का

प्रस्ताव उसके सामने रख देते हैं । ऐसा ही एक प्रस्ताव रखा शादी में बधाई गीत गाने का, जिसके लिए कालिदास जाते तो हैं परन्तु गीत गाये बिना वापस आ जाते हैं और कहते हैं " मेरे साहित्यिक मूल्य मुझे बधाई गीत गाने की अनुमति नहीं देते । मैं सौन्दर्यबोधीय प्राचिलकों के साथ आत्माभिव्यक्ति के लिए लिखता हूँ ।"[12] कालिदास की इस बात पर मातुल कहते हैं कि " एक बिल्कुल सादा, निर्दोष प्रश्न पूछना चाहता हूँ – तुम्हारी ये सब महान् और उदात्त वस्तुएँ तुम्हारे लिए एक बोरा गेहूँ जुटा सकती हैं ?"[13] इसी तरह कुछ दिनों बाद मातुल चूड़ी-विक्रेयक का प्रस्ताव लेकर आ जाते हैं परन्तु कालिदास ये भी स्वीकार नहीं करते, चाहे मातुल उन पर कितना भी दबाव डाले या गुस्सा करें । इन प्रसंगों के माध्यम से लेखक सुरेन्द्र वर्मा एक कवि-रचनाकार की दयनीय आर्थिक स्थिति का चित्रण करते हैं और दिखाते हैं की रचनाकार की स्थिति कितनी भी दयनीय क्यों न हो जाए वह अपने आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाते हुए किसी दूसरे के लिए रचना-कर्म नही करेंगे ।

उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा ने अपने इस उपन्यास 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' में प्रेम के उदात्त रूप का चित्रण किया है कालिदास और मुग्धा के माध्यम से । इस उदात्त प्रेम को दिखाने के लिए उपन्यास के शुरुआत में ही वे एक प्रतियोगिता का सहारा लेते हैं । इस प्रतियोगिता में देह-गंध के आधार पर अपने सबसे अन्तरंग व्यक्ति की पहचान करनी होती है । कालिदास तुरंत मुग्धा को पहचान लेते हैं और कहते हैं " मैंने मुग्धा की पहचान की है उसकी आत्मा-सुगन्धि के आधार पर-देह-गन्ध-पर नहीं ।"[14] इन पंक्तियों में हम कलिदास का उदात्त प्रेम तथा

कालिदास और मुग्धा के बीच की अंतरंगता को देख सकते हैं । कालिदास के व्यक्तिगत जीवन की दूसरी समस्या है मुग्धा से शादी की । इन दोनों के प्रेम के बारे में सब जानते हैं । मातुल और मुग्धा के पिता सुन्दरदास, कालिदास पर मुग्धा से शादी करने का दबाव डालते हैं । कालिदास कहते हैं कि अभी मेरा सब कुछ अस्थिर है, मैं अभी शादी नहीं कर सकता । इस बात पर मातुल कहते हैं " तब अनिश्चित ऋतु में प्रेम करने का क्या अधिकार है तुम्हारा ? अपनी भावनाओं को हिमीकृत करो और मुक्त कर दो मुग्धा को- "।[15] यहाँ भारतीय समाज के अभिभावक की मानसिकता को दिखाते हुए लेखक इस बात पर प्रश्न खड़ा करते हैं कि क्या एक कवि या कलाकार को प्रेम करने का अधिकार नहीं है ? क्या प्रेम करने का मतलब शादी करना होता है ?

कालिदास अपनी वर्तमान दयनीय स्थिति से ऊब चुके हैं । " इससे कुछ भिन्न जीवन चाहिए मुझे – जब तक मेरा अपना जीवन कुरूप है, तो नैसर्गिक रूपच्छटा से क्षतिपूर्ति कब तक करता रहूँगा ? कब तक सींचता रहूँगा अपने वन्ध्य जीवन को चंद्रमा, बकुल और तुषार कांति से ?...वह केवल मेरा निर्लज्ज जीवन मोह है, जो ग्रीष्म से शिशिर और हेमन्त से वसन्त तक खींचे लिये जा रहा है मुझे ।"[16] इन वाक्यों से हम एक कलाकार के मन की वेदना को समझ सकते हैं । कालिदास को अध्यापन वृत्ति मिलती है, परन्तु वह अध्यापक बन कर अपनी जिंदगी बरबाद नहीं करना चाहते । उनकी महत्त्वाकांक्षा दूसरी है, उनकी अपनी एक कलात्मक भूख है, जिसे वह नान्दी ग्राम में रहकर पूरा नहीं कर सकता । इसीलिए वह मुग्धा से पूछकर

और कीर्तिभट्ट को बता कर नान्दी ग्राम से पलायन कर जाते हैं । कालिदास के पलायन से सब दुःखी हैं । मातुल क्रोधित होकर कहते हैं “ एक बार यमदूत पर विश्वास किया जा सकता है, कालिदास पर नहीं ।”[17] कालिदास के पलायन से केवल शैवाल खुश है, क्योंकि वह अपने अन्दर के कलाकार का दमन अपने प्रेम और व्यक्तिगत दायित्त्वों के कारण कर चुका है, इसलिए वह नहीं चाहता कि कालिदास भी ऐसा करें । कालिदास को शुभाशीष देते हुए वह कहता है “ पराजित के अन्तर से निकल रही है आशीष – तुम्हारा पथ यशस्वी हो ।”[18]

इस उपन्यास के दूसरे खंड में नाट्य-रूपक ‘छद्मवेषी राजकन्या’ और प्रगीत-काव्य ‘ऋतुसंहार’ लिए कालिदास का उज्जयिनी में प्रवेश से लेकर ‘रघुवंशम्’ लिखने के लिए अनुबंध मिलने और भ्रमण-यात्रा पर जाने तक के बीच की संघर्ष गाथा है । इस खंड के शुरुआत में कालिदास उज्जयिनी पहुँचता है, अपनी कलात्मक महत्त्वाकांक्षा को लेकर, परन्तु एक नाटककार और कवि के रूप में हर जगह उसे अपमानित होना पड़ता है । शुरुआत होती है धर्मशाला से, जहाँ धर्मशाला का प्रबंधक कालिदास को कवि-नाटककार जानकार सबसे पीछे का कमरा देता है । यहीं कालिदास की भेंट मन्दार नगर के रचनाकार श्वेतांग से होती है, जो उन्हें राजप्रसाद, राष्ट्रीय नाट्य-केंद्र, राष्ट्रीय साहित्य-केंद्र, संगीत-केंद्र आदि दिखाता है और पूछता है “ तुम्हारा कोई संबंधी, मित्र या परिचित ऊँचे पद पर सुशोभित है यहाँ ?”[19] कालिदास के ‘नहीं’ कहने पर कहता है “ बहुत कठिन होगा तुम्हारा पथ - ”।[20] यहाँ लेखक इन वाक्यों के माध्यम से आज इस सच्चाई की ओर संकेत करते हैं

कि आज केवल व्यक्ति की प्रतिभा उनके कामयाब होने के लिए काफी नहीं है, बल्कि ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित लोगों से मित्रता या परिचय कामयाब होने के लिए ज्यादा जरूरी है । इस उपन्यास में यह भी दिखाया गया है कि रचनाकार की स्थिति कितनी भी खराब या दयनीय क्यों न हो, वह अपनी रचनात्मक महत्त्वाकांक्षा की उपेक्षा नहीं करता है और अपने रचना-कर्म को निरंतर जारी रखता है । धर्मशाला से निकाले जाने के बाद कालिदास को श्वेतांग के सहयोग से राजकीय पशुशाला में थोड़ी-सी जगह और दैनिक वृत्ति पर अस्थायी काम मिल जाता है । यहाँ भी कालिदास रचना-कर्म जारी रखता है चाहे वह अश्वगंध से कितना भी परेशान क्यों न हो ? कालिदास के पास अपनी कलात्मक महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति और अदम्य साहस है जिन्हें हम इन वाक्यों के द्वारा समझ सकते हैं – "मेरा सौन्दर्यबोध परिष्कृत है – मैं संवेदनासंपन्न हूँ – मैं विपुल शब्द-सामर्थ्य का धनी हूँ – यह टुच्चे अश्व मेरी रचनात्मक महत्त्वाकांक्षा को कोई स्थायी आघात नहीं पहुँचा सकते – इस चारदीवारी में मेरी केवल देह है, मेरी आत्मा निर्बन्ध है - "।[21]

कालिदास अपनी कृति 'ऋतुसंहार' पर प्रमुख आलोचक आलोकवर्धन की प्रतिक्रिया जानने के लिए उनसे मिलने जाते हैं वहाँ आलोकवर्धन द्वारा 'ऋतुसंहार' के न पढ़ने और बहुत रूखा व्यवहार देखने पर कालिदास पूरी तरह विक्षुब्ध और व्यथित हो जाते हैं । " जैसे पहला गहन प्रेम कभी नहीं भूलता, वैसे ही अनुत्तरदायी गहन धिक्कार भी शिलांकन समान भीतर स्थायी रह जाता है ।"[22] कालिदास के

साथ भी यही हुआ जिसे हम इन वाक्यों के द्वारा समझ सकते हैं " अब बोल – अपनी आत्मा तिल-तिल जलाते हुए मैंने एक रचना की – अन्तर के रक्त से लिखा था उसे – तेरे पास पढ़ने के लिए दो पल तक नहीं नराधम ?...वेदव्यास, वाल्मीकि और अश्वघोष की पाण्डुलिपि ही तेरे स्पर्श के योग्य है ? कालिदास की पाण्डुलिपि छू लेगा, तो कोढ़ फूट उठेगा तेरी संवेदना पर ?"[23] कालिदास के इस करुण विलाप को देखने पर हम कह सकते हैं कि किसी रचनाकार की रचना की उपेक्षा होने पर उसे कितना दुःख होता है । कालिदास के इस कारुणिक स्थिति को देखते हुए मुनि विकराल वापस ग्राम जाने की बात कहते हैं कि यहाँ " न तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा फलीभूत होगी, न व्यक्ति रूप में सुख पाओगे ।"[24]

इतनी निराशा के बावजूद कालिदास हार नहीं मानते हैं और अपनी काव्य-कृति 'ऋतुसंहार' को प्रकाशित करवाने के लिए केन्द्रीय साहित्य-केंद्र जाते हैं जहाँ उसे एक रचनाकार 'कपिल किंजल्क' मिलते हैं जिससे पता चलता है कि काव्य प्रकाशित करवाने के लिए कितनी रौद्र प्रतियोगिता है – " इस केंद्र को गद्य की प्रतिमास लगभग एक सौ पाण्डुलिपि मिलती है, लेकिन काव्य की ?...लगभग एक लक्ष !"[25] काव्य के क्षेत्र में होने वाली प्रतिस्पर्धा का चित्रण तो मिलता ही है इस उपन्यास में, साथ ही इस प्रतिस्पर्धा में पीछे छूटे कवियों-रचनाकारों का आत्महत्या की ओर अग्रसर होने और आत्महत्या करने की मार्मिक स्थिति का संकेत भी किया गया है तिलांजलि घाट के रूप में । " उज्जयिनी के सारे कलाकार जीवन-पटाक्षेप के लिए वहीं जाते हैं – 'महत्त्वाकांक्षा-तिलांजलि घाट' कहा जाता है उसे ।"[26]

कालिदास की काव्य-कृति 'ऋतुसंहार' को यहाँ भी कथा, नायक-नायिका और अंतर्वस्तु न होने के कारण पहले तो पुनर्विचार अधिकरण में भेजा जाता है फिर 'साहित्यिक प्रयोग है ।' कहकर अस्वीकृत कर दिया जाता है । यहाँ हम उस पम्परावादी मानसिकता को देख सकते हैं जो काव्य के क्षेत्र में आये किसी नई प्रवृत्ति, रूप-बंध और शैली को स्वीकार नहीं कर पाते हैं और उसे साहित्यिक प्रयोग कहकर उसकी उपेक्षा करते हैं । वे उन नई रचनाओं को अपनी पुरानी और परम्परावादी मापदंडों के आधार पर देखते हुए उसे नकार देते हैं जो कि सही नहीं है । एक तरफ कालिदास के काव्य में नयी भावभूमि, आधुनिक संवेदना, नयी भाषा और नयी अंतर्वस्तु होने के कारण उनके काव्य को अस्वीकृत कर दिया जाता है, तो दूसरी ओर उसी आधुनिक संवेदना औए प्रयोगवादी शिल्पविधान से पूर्ण कला, साहित्य की खोज में है प्रियंगुमंजरी । प्रियंगुमंजरी उज्जयिनी की राजकुमारी हैं, जिन्हें 'उज्जयिनी की आत्मा' कहा जाता है । वह राष्ट्रीय साहित्य-केंद्र, ललित-कला केंद्र और नृत्य-संगीत केंद्र की अध्यक्ष हैं । इन तीनों कलात्मक स्तर पर प्रियंगुमंजरी को कोई नयी प्रतिभा नहीं दिखती, जिससे क्रोधित होकर वह कहती है " उज्जयिनी में कोई प्रतिभा नहीं । उज्जयिनी केवल कला-प्रपंचकों, रस-षड्यंत्रियों, और काव्य-कूटनीतिज्ञों से पदाक्रांत है, कला पट पर यदि मैं कुछ देखती हूँ, तो केवल शून्य - "[27]

अपनी इसी कलात्मक आकांक्षा के कारण प्रियंगुमंजरी कालिदास के नाट्य-रूपक का शीर्षक 'छद्मवेषी राजकन्य' सुनते ही उत्तेजित होकर देखने के लिए पहले प्रदर्शन पर चली गई । जिस तरह की प्रतिभा की खोज थी प्रियंगुमंजरी को उसे आज वह प्रतिभा कालिदास में दिख गयी । इससे वह प्रसन्न होते हुए कहती है " जिस

तथ्य ने मुझे अतिरिक्त, उत्तेजित प्रसन्नता दी है, वह यह कि रंगमंडल ने एक सर्वथा नए और समर्थ नाटककार का संधान किया है।"[28] सिर्फ राजकुमारी ही नहीं नाट्य-निर्देशक सोमेश भी इस नयी प्रतिभा को पाकर खुश है । इस नाट्य-रूपक और कालिदास के बारे में वे कहते हैं " संस्कृत रूमानी नाटक की संरचना का स्तर उठाते और उसकी शैली को परिष्कृत करते हुए एक ग्रामीण नवसिखिये ने संतुलित नाट्य-कौशल और निजी रंग-दृष्टि उद्घाटित की है।"[29] इस नाट्य-प्रदर्शन से कालिदास का आर्थिक संकट तो दूर हो ही गया, साथ ही टूटता हुआ मनोबल भी दृढ़ हो गया।

कालिदास नाट्य-प्रस्तुति के तुरंत बाद स्वर्ण मुद्रा की थैली और पत्र गाँव भेजते हैं। पत्र में कीर्तिभट्ट , मुग्धा और मातुल के आने की बात कहता है, परन्तु सुन्दरदास मुग्धा को आने नहीं देता है और कहता है " एक नाटक के प्रदर्शन से क्या आय हो सकती है ? उसके सहारे कितने दिन जी सकता है कोई ? वह दूसरा नाटक कब लिख पाएगा ? अगर नहीं लिख पाया, तो ? लिख भी लिया, लेकिन मंचन नहीं हुआ तो, क्या यह दूसरे जीवन का दायित्त्व लेने की पद्धति है ?"[30] इन वाक्यों के माध्यम से लेखक ने यहाँ एक भारतीय पिता का, अपनी संतान के लिए चिंतित होने की स्वाभाविक प्रक्रिया को दिखाया है। इसके साथ ही कलाकार के भविष्य पर भी प्रश्न चिन्ह खड़ा किया है। सुन्दरदास के इन पूर्वाग्रहों से मुग्धा क्रोधित हो जाती है और कहती है " जब कोई भावना की प्रतिबद्धता करता है, तो किसी किन्तु-परन्तु के बिना "[31] मुग्धा के इस बात पर पंचप्रधान कहते हैं " भावना कोमल होती है मुग्धा, वास्तविकता कठिन और कठोर - "[32] अंततः मुग्धा उज्जयिनी नहीं जा पाती है।

राजप्रसाद से आये आमंत्रण पर जब कालिदास राजप्रसाद जाते हैं तो वहाँ राजकुमारी से बातचीत के दौरान वे समझ जाते हैं कि राजकुमारी भावात्मक रूप से अकेली हैं और अपूर्वा के नाम से वही चित्र बनाती हैं । इस बात से पहले तो राजकुमारी अस्थिर हो जाती हैं परन्तु फिर कालिदास की ओर आकर्षित होने लगती हैं । उपन्यास के इस खंड में राजकुमारी हमेशा अपने स्त्री और राजकुमारी होने के कारण उत्पन्न द्वंद्व की स्थिति में रहती हैं कि अपने किस रूप को ज्यादा महत्त्व दें । यह द्वंद्व पहली बार तब दिखता है जब राजकुमारी की माँ 'अरुधती' युवराज प्रचंडबल से प्रियंगुमंजरी की शादी की बात करती है और प्रियंगुमंजरी के ना कहने पर उसे राजकुमारी होने का धर्म याद दिलाती हैं । कालिदास, प्रियंगुमंजरी के इस दयनीय स्थिति को देखते हुए कहते हैं " मेरी सौ वर्ष पुरानी मान्यता है कि मैं संसार संतप्त प्राणी हूँ, लेकिन तुम्हारा दुर्भाग्य मुझे रक्त के आँसू रुलाता है ! अपने जीवन का छोटा सा निर्णय नहीं ले सकती तुम ; जन्म लेते ही तुम्हारे जीवन का सम्पूर्ण मानचित्र तुम्हारी हथेली पर रख दिया गया है, तुम घुट रही हो यहाँ !"[33] प्रियंगुमंजरी जब अपने परिवार और राज्य के प्रति अपने दायित्त्व की बात करती है तो कालिदास कहते हैं कि तुम्हारा पहला दायित्व तुम्हारे प्रति है । यहाँ लेखक व्यक्तिवाद और सामाजवाद के द्वंद्व को दिखाते हुए व्यक्ति के महत्त्व को स्थापित करने की कोशिश करते हैं ।

कालिदास से बात करते हुए प्रियंगुमंजरी को उसके काव्य-कृति के अस्वीकृत हो जाने का संकेत मिलता है तो वह उस कृति का पुनर्मूल्यांकन करवाती है । इस

कृति को अस्वीकृत करते हुए धवलकीर्ति ने जो टिप्पणी की थी – " 'ऋतुसंहार' साहित्य समाज को चेतावनी देने वाला काव्य-प्रयोग है, लगता है कि उसकी अवधारणा काव्यशास्त्र के उल्लंघन करने के लिए ही हुई है। ऐसी प्रवृत्ति को जड़ से ही काट देना चाहिए ।"[34] उसे देखकर प्रियंगुमंजरी बहुत क्रोधित होती है और कहती है " आपको यह स्मरण रखना है कि साहित्य केंद्र कुछ गिने-चुने स्वनामधन्यों की लीला भूमि नहीं ।"[35] 'ऋतुसंहार' के प्रकाशन पर विमोचन का भव्य आयोजन किया जाता है, मार्तंड, सुकेतु, आलोकवर्धन, धवलकीर्ति, प्रियंगुमंजरी आदि उपस्थित रहते हैं। मार्तंड इस कृति की विशेषता बताते हुए कहते हैं " इस विशुद्ध निसर्ग-चारणकाव्य की हर पंक्ति में भावातिरेक धड़कता और उसे अपनी ऊष्मा से स्पन्दित करता है। कवि ने समस्त मानवीय समाज एक सामान्य भाव और सूत्र में बाँधा है – वैदिक मंत्रोच्चारक की अचूक सुर, लय एवं भाव-निर्वाह क्षमता के साथ ।"[36] प्रखर आलोचक सुकेतु कहते हैं कि " यह काव्य-कृति हमसे माँग करती है कि हम उन पुरातन काव्य-मानदंडो का पुनः परीक्षण और पुनर्निर्धारण करें, जो नायक-नायिका भेद, प्रमुख भाव, और फलागम को ही रस-निष्पति का स्रोत मानते हैं। अब हमें एक नए काव्यशास्त्र, बन्धनमुक्त काव्यशास्त्र को लेकर विमर्श करना ही होगा ।"[37] इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन मानदंडो के आधार पर 'ऋतुसंहार' को अस्वीकृत किया गया था, 'ऋतुसंहार' के प्रकाशन के बाद उन्हीं मानदंडों पर प्रश्न-चिन्ह खड़ा हो गया और उसे बदलने की माँग उठने लगी। यहाँ हम लेखक की प्रगतिशील चेतना को देख सकते हैं।

कालिदास और प्रियंगुमंजरी जितना एक-दूसरे के करीब आते हैं दोनों के मन का अंतर्द्वंद्व उतना ही बढ़ता जाता है। प्रियंगुमंजरी एक राजकुमारी के धर्म और एक स्त्री की भवना के बीच के अंतर्द्वंद्व से जूझती है तो कालिदास प्रियंगुमंजरी और मुग्धा के प्रेम के कारण उत्पन्न हुए द्वंद्व से परेशान हैं। जब भी वे प्रियंगुमंजरी के साथ होते हैं तो उन्हें मुग्धा का करुण चेहरा याद आता है। इस द्वंद्व के कारण वे रात-रात भर सो नहीं पाते हैं।

नवरत्न मन्त्रणा कक्ष में कालिदास के विषय में जब प्रियंगुमंजरी से उसका विचार माँगते हैं तो वह कहती है " गुप्त सम्राज्य की सौन्दर्यबोधीय मरुभूमि में आर्य कालिदास एक और अकेले हरित द्वीप हैं।"[38] प्रियंगुमंजरी के इस विचार से धवलकीर्ति तो स्तब्ध ही रह जाता है। सौमिल्ल, तुंगभ्रद और श्वेतांग साहित्य-केंद्र में चल रही मिलन संध्या में कालिदास पर कठोर व्यंग्याघात करते हैं। इन व्यंग्यों से कालिदास का रचनाकार मन क्षत-विक्षत हो जाता है जिसके कारण क्रोधित होकर प्रियंगुमंजरी से कहते हैं " संघर्ष कर रहा हूँ मैं, मेरे जैसे के दाय में केवल क्षत और हृदयाघात पाते हैं – अपना स्वेद, आँसू और रक्त बहाते हुए मैं अपना बित्ता-सा स्थान बनाने के प्राणलेवा प्रयास में लगा हूँ – तुम्हारे इस प्रस्तर-संसार में मुझे अकेला छोड़ दो कृपा कर और चीनांशुक और मुक्तालाप के अपने संसार में सिधारो-"[39] कालिदास के इस व्यवहार से राजकुमारी दुखी होकर चली जाती है।

इन्हीं दिनों युवराज प्रचंडबल उज्जयिनी आता है प्रियंगुमंजरी से मिलने के लिए। प्रियंगुमंजरी और प्रचंडबल के विचार बिल्कुल भी नहीं मिलते। प्रचंडबल को

अपने वंश का बहुत दंभ और घमंड है, जो प्रियंगुमंजरी को तो पसंद नहीं ही है साथ में आदित्य विक्रम को भी पसंद नही है, वह भी नहीं चाहता की उसकी बहन प्रियंगु की शादी प्रचंडबल से हो । कालिदास को प्रियंगुमंजरी के साथ किये गये अपने कठोर व्यवहार पर पश्चाताप होता है वह उससे माफ़ी माँगने जाते हैं । इस उपन्यास में प्रसिद्ध आलोचक आलोकवर्धन के माध्यम से लेखक ने एक ऐसे स्वार्थी और पदलोलुप व्यक्ति को दिखाया है जो अपने स्वार्थपूर्ति के लिए अर्थात् उपकुलपति पद के लिए ऐसे व्यक्ति के सामने गिरगिराने से भी नहीं चूकता, जिसकी कभी उसने उपेक्षा की थी । आलोकवर्धन अपनी सिफारिश करते हुए कालिदास से कहते हैं " तुममें सामर्थ्य है कि मेरी नियति बदल दो ।"[40] कालिदास उसे करुण दृष्टि से देखते हुए कहते हैं, " एक समय था, जब आपको लेकर बिल्कुल यही आशा मुझको भी थी !"[41] इस प्रकार हम देखते हैं कि समय कितना जल्दी बदल जाता है । इसलिए व्यक्ति को कभी अपने पद-प्रतिष्ठा का घमंड नहीं करना चाहिए ।

सम्राट के सचिवालय से रघुकुल के बारे में महाकाव्य रचना का निर्देश आता है। इस रचना का पारिश्रमिक है एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ । इसके लिए धवलकीर्ति, तुंगभ्रद को उपयुक्त मानते हैं परन्तु सुकेतु, आलोकवर्धन और मार्तंड आदि कालिदास को योग्य मानते हैं । अंततः यह अनुबंध कालिदास को मिलता है । इससे धवलकीर्ति, उत्तमगिरि, सौमिल्ल और तुंगभ्रद दुखी होते हैं और इसके पीछे प्रियंगुमंजरी का हाथ मानते हैं । 'रघुवंशम्' का अनुबंध मिलने पर कालिदास मुग्धा को पात्र लिखते हैं जिसमें अपने अनुबंध और यात्रा करते हुए मुग्धा, मातुल और कीर्तिभट्ट को उज्जयिनी आने के लिए कहते हैं । कालिदास के इस बात से सुन्दरदास क्रोधित हो

जाता है । पंचगण जब मुग्धा से उसका विचार पूछते हैं कि तुम क्या चाहती हो, तो मुग्धा जाने से मना करती हुई कहती है “ मेरी इच्छा-अनिच्छा पूछे बिना उसने सदा मेरे बारे में निर्णय लेने का अधिकार कैसे ले लिया ? मुझसे मिलने की कोई तड़प नही है उसमें ? वर्षो बाद भी उस व्यक्ति से मिलने के लिए कुछ मास व्यर्थ नहीं कर सकता वह, जिसने अपना जीवन ही व्यर्थ कर दिया उसके पीछे – जिसको लेकर वह दावा करता है कि उसकी आत्मा-सहचरी है !”[42] मुग्धा की ऐसी करुण और आहत अवस्था देख कर मातुल और विद्याभास्कर उज्जयिनी जाते हैं कालिदास को ग्राम लाने के लिए, परन्तु कालिदास यह कहकर कि “ आप दोनों ने दो रजत मुद्राओं के लिए रक्ताश्रु बहाते देखा है मुझे । तो आप यह क्यों नहीं समझ सकते कि इस आवंटन का मेरे लिए क्या अर्थ है ? मृत्यु से पहले ही मोक्ष मिल चुका है मुझे – मैं यह अवसर कैसे छोड़ दूँ ?... आपके आदेश पर शिप्रा में कूद सकता हूँ – अभी – लेकिन यह आवंटन नहीं छोड़ सकता ।”[43] यहाँ हम प्रेम और कलाकार मन के द्वंद्व को तो देखते ही हैं साथ में यह भी पता चलता है कि कलाकार के लिए उसकी कलात्मक महत्त्वाकांक्षा ही सब कुछ होता है ।

ग्राम जाने से मना करने पर मुग्धा द्वारा भेजे गये पत्र को पढ़ते हुए कालिदास भावात्मक उन्माद से भर जाते हैं । मुग्धा की भिन्न-भिन्न छवियाँ उनके सामने उभरती है उसके साथ बिताये हर एक पल याद आता है । कालिदास लेखनी लेकर बैठ जाते हैं उसे मुग्धा के अलावा कुछ भी याद नहीं रहता । “ लेखक कक्ष, चित्तरंजन कक्ष, मिलन कक्ष, मैत्री कक्ष, शैयाकक्ष, योगकक्ष – कहीं भी लेखनी लिए झुका रहता

– मन्त्रविद्ध था जैसे, आसपास से निरपेक्ष, उसकी चेतना तक से विमुक्त - ”[44] जब उन्हें चेतना आयी, तब तक वह ‘मेघदूत’ लिख चुके थे । अब उन्हें अपनी यात्रा का होश आया तो जल्दी-जल्दी यात्रा-दल तक पहुँच पाए । इधर प्रियंगुमंजरी कालिदास के साथ बिताये क्षणों को याद करती हुई उसके यात्रा पर जाने से विचलित है ।

उपन्यास के तीसरे खंड में ‘रघुवंशम्’ लिखने के लिए देश-विदेश की यात्रा पर कालिदास के जाने से लेकर ‘रघुवंशम्’ पूरा होने पर उज्जयिनी लौटने तक की कथा है । पर्वत, समुद्र, मरुभूमि आदि की यात्रा और उस यात्रा में आने वाले अवरोधों, बाधाओं का वर्णन हुआ है इस खंड में । इसके साथ-साथ उज्जयिनी और नंदीग्राम की कथा भी चलती रहती है । उज्जयिनी में राजकवि पद के लिए तुंगभद्र और श्वेतंग का नाम आता है परन्तु सम्राट यह कहकर कि “ दोनों प्रमुख हैं, लेकिन असाधारण नहीं।”[45] दोनों में से किसी को राजकवि का सम्मान नहीं देते हैं ।

कालिदास यात्रा के दौरान ही ‘मेघदूत’ की पाण्डुलिपि प्रियंगुमंजरी को भेजते हैं । ‘मेघदूत’ प्रकाशित होने के साथ ही आर्यावर्त्त के प्रत्येक मनुष्य की जुबान पर चढ़ जाता है और संस्कृत साहित्य के आज तक के सारे रिकार्ड को तोड़ देता है । ‘मेघदूतम् : अन्तरराष्ट्रीय परिसंवाद’ नाम से एक परिसंवाद साहित्य-केंद्र में आयोजित की जाती है । प्रखर आलोचक सुकेतु ‘मेघदूत’ के संबंध में कहते हैं “ यह गौरव-पद्य प्रतिकूल भावनाओं को ऐसे परिशुद्ध एवं सुनिश्चित बौद्धिक सूत्रीकरण में तत्त्वांतरित कर देता है, जो समृद्ध तथा विलक्षण, ऐन्द्रियकिन्तु निजी, सौन्दर्यपरक

और सार्विक हैं ।”[46] इसी तरह एक विदुषी के अनुसार “ नीरव मध्यरात्रि में प्रज्वलित चीत्कार है मेघदूतम्” ।[47] तुंगभद्र ‘मेघदूत’ की कथावस्तु पर आपत्ति करते हुए कहते हैं यह ‘योग-वशिष्ठ’ से लिया गया है । इस आपत्ति पर एक विद्वान कहते हैं “ जब से साहित्य का अथ हुआ, रचनाकार प्रेरणा बिंदु या प्लुति फलक का आश्रय लेते रहे हैं । महाभारत के बिना भास की कल्पना की जा सकती है ? यह कहा जा सकता है कि संसार में मौलिक कुछ नहीं । सार्थक रचनाकार का निर्वहन, व्याख्या और जीवन-दृष्टि ही तो कृति को रचनात्मक बनाती है ।”[48] यहाँ इस प्रसंग के माध्यम से लेखक ने कालिदास की रचना ‘मेघदूत’ के महत्त्व को स्थापित करने के साथ मौलिक-अमौलिक जैसे गंभीर विषय पर भी विचार किया है ।

‘मेघदूत’ के प्रकाशित होने के बाद उसकी लोकप्रियता को देखते हुए ‘मेघदूत’ जैसी महान रचना करने वाले कवि कालिदास को राजकवि बनाने की बात नवरत्न परिषद के सदस्य सम्राट से कहते हैं । सम्राट इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए अश्वमेघ समारोह की रजत जयंती पर राजकवि की नियुक्ति की बात करते हैं । तब तक लिए इस निर्णय को गुप्त रखने के लिए कहा जाता है । इस खंड के अंत में प्रियंगुमंजरी के स्वयंवर की घोषणा होती है ।

चौथे खंड की शुरुआत स्वयंवर की घोषणा से आहत प्रियंगुमंजरी के उज्जयिनी छोड़ कर जाने के निर्णय से होती है, प्रतु आदित्य विक्रम और चित्रांगदा के समझने पर कि “ ऐसा कोई नियम नहीं कि स्वयंवर को निर्णायक होना चाहिए”[49] के कारण वह उज्जयिनी नहीं छोड़ती । प्रियंगुमंजरी के स्वयंवर की घोषणा से सारा उज्जयिनी

खुशियाँ मना रहा होता है । इसी समय कालिदास का उज्जयिनी में आगमन होता है । कालिदास उज्जयिनी आने पर सबसे पहले नान्दीग्राम पत्र लिखते हैं जिसमें कुछ दिनों में ग्राम आने और मुग्धा से शादी करने की बात कहते हैं । ग्राम में सब इस शादी की बात से खुश होकर शादी की तैयारी शुरू कर देते हैं ।

प्रियंगुमंजरी अपने राजदुहिता होने के धर्म को निभाते हुए अपनी माँ के इच्छानुसार युवराज प्रचंडबल से शादी करने का मन बना लेती है और स्वयंवर सभा में प्रचंडबल को वरण करने के लिए जाती है परन्तु अपने अन्दर चल रहे स्त्री और राजदुहिता होने के द्वंद्व से जूझती हुई अचानक कालिदास को वरमाला पहना देती है । कालिदास इया सभा में मंगलपाठ के लिए बुलाये गये थे । प्रियंगुमंजरी के इस वरन से सब लोग कुछ देर के लिए आश्चर्यचकित रहते हैं, फिर पूरी उज्जयिनी में इस ख़ुशी की लहर दौड़ जाती है कि राजकुमारी प्रियंगुमंजरी ने कवि कालिदास का वरन किया है । केवल राजपरिवार इस वरन से दुखी है । कालिदास इस स्वयंवर से बहुत आहत होते हैं क्योंकि वे यात्रा से मुग्धा से शादी करने की और हमेशा मुग्धा के साथ रहने की बात सोच कर आये थे । प्रियंगुमंजरी को जब इस बात का पता चलता है कि कालिदास का मुग्धा से गन्धर्व विवाह हो चुका है तो उसे कठोर आघात लगता है और उधर ग्राम में जब मुग्धा को इस स्वयंवर के बारे में पता चलता है तो वह अचेत हो जाती है ।

कालिदास और प्रियंगुमंजरी के साथ पूरा राजपरिवार नन्दी ग्राम जाता है । वहाँ प्रियंगुमंजरी मुग्धा से अपने स्वयंवर में कालिदास के निर्दोष होने की बात

कहती है फिर अपने अन्दर के द्वंद्व और भावात्मक स्तर पर हुई अपनी दयनीय स्थिति बताती है । वह कहती है कि मैंने सोचा था कि 'मेघदूत' की 'यक्षिणी' मैं हूँ । सम्राट मुग्धा से कहते हैं " समान नागरिक अधिकार और न्याय मेरे लिए सर्वोच्च है ।"[50] तो तुम जो निर्णय करोगी, वह मान्य होगा ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस उपन्यास का चौथा खंड पूरी तरह कालिदास और प्रियंगुमंजरी के व्यक्तिगत जीवन पर केन्द्रित है । इस खंड में राजपरिवार में जन्म लेने के कारण अपने निजी जीवन का चुनाव न कर सकने की विवशता से उत्पन्न मानसिक कष्ट का यथार्थ चित्रण किया गया है जिसे हम आदित्य विक्रम के इस कथन में देख सकते हैं – " राजवंश में जन्म लेने का अर्थ है निजी जीवन के अपने चुनाव को बन्धक बना देना - "।[51]

पाँचवा खंड उपसंहार है । इस खंड में कालिदास बूढ़े हो चुके हैं और बहुत सालों बाद नान्दी ग्राम आये हैं तो उन्हें मुग्धा के निर्णय का वह अंतिम पल याद आता है जब मुग्धा ने कहा था कि " मैं चाहती हूँ कि राजकन्या और कालिदास साथ-साथ उज्जयिनी वापस लौट जाएँ, वह दोनों एक-दूसरे और उज्जयिनी के हैं ।"[52] मुग्धा ये सब कालिदास के पद, प्रतिष्ठा और उनके अन्दर के रचनात्मक संसार को बनाये रखने के लिए करती है । इस प्रकार हम देखते हैं कि इस खंड में मुग्धा के निःस्वार्थ प्रेम को चित्रित किया गया है । लेखक ने मुग्धा के माध्यम से प्रेम के एक ऐसे स्वरूप का चित्रण किया है, जिसमें त्याग है, समर्पण है और एक-दूसरे के प्रति सम्मान का भाव है ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि विवरणात्मक शैली में लिखा गया यह उपन्यास बहुत बड़ा और व्यापक है । इसका क्षेत्र विस्तृत है । इसमें कालिदास के माध्यम से एक कलाकार की कलात्मक महत्त्वाकांक्षा और उस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति और अदम्य साहस के साथ किये जाने वाले संघर्ष को चित्रित किया गया है । इसमें यह भी दिखाया गया है कि कालिदास कलात्मक स्तर पर सफल और प्रतिष्ठित भले ही हो गये, परन्तु व्यक्तिगत जीवन में वे एक असफल व्यक्ति ही रहे । इस उपन्यास में एक साथ कई स्तरों पर द्वंद्व का चित्रण किया गया है जैसे – परम्परावादी सोच और आधुनिक संवेदना का द्वंद्व, कला और प्रेम के बीच का द्वंद्व, कला और सत्ता के बीच का द्वंद्व आदि । इसमें रचना की मौलिकता पर भी गंभीर विचार किया गया है । इसमें आलोचना के मानदंड पर भी प्रश्न खड़ा किया गया है ।

सन्दर्भ सूची

1. E.M. Forster, Aspects of novel, page – 32

2. Albert cook, The meaning of fiction, page – 249

3. Green wood, The play writes, page – 09

4. डॉ० शम्भुनाथ टंडन, हिंदी उपन्यास का उद्भव और विकास, पृ० सं० – 41

5. डॉ० सरोजनी त्रिपाठी, आधुनिक हिंदी उपन्यास में वस्तु विन्यास, पृ० सं०– 70

6. सुरेन्द्र वर्मा, काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से, पृ० सं० – 28

7. वही. पृ० सं० – 31

8. वही. पृ० सं० – 31

9. वही. पृ० सं० – 47

10. वही. पृ० सं० – 48

11. वही. पृ० सं० – 83

12. वही. पृ० सं० – 72

13. वही. पृ० सं० – 72

14. वही. पृ० सं० – 51

15. वही. पृ० सं० – 115

16. वही. पृ० सं० – 42-43

17. वही. पृ० सं० – 145

18. वही. पृ० सं० – 146

19. वही. पृ० सं० – 173

20. वही. पृ० सं० – 174

21. वही. पृ० सं० – 184-85

22. वही. पृ० सं० – 194

23. वही, पृ० सं० – 195

24. वही, पृ० सं० – 196

25. वही, पृ० सं० – 200

26. वही, पृ० सं० – 196

27. वही, पृ० सं० - 227

28. वही, पृ० सं० – 248

29. वही, पृ० सं० – 241

30. वही, पृ० सं०

31 . वही, पृ० सं० – 253

32 . वही, पृ० सं० – 253

33. वही, पृ० सं० – 271

34. वही, पृ० सं० – 289

35. वही, पृ० सं० – 289

36. वही, पृ० सं० – 291

37. वही, पृ० सं० – 292

38. वही, पृ० सं० – 321

39. वही, पृ० सं० – 337

40. वही, पृ० सं० – 345

41. वही, पृ० सं० – 345

42. वही, पृ० सं० – 361

43. वही, पृ० सं० – 369

44. वही, पृ० सं० – 372

45. वही, पृ० सं० – 403

46. वही, पृ० सं० - 420

47. वही, पृ० सं० – 420

48. वही, पृ० सं० – 421

49. वही, पृ० सं० – 454

50. वही, पृ० सं० – 510

51. वही, पृ० सं० – 480

52. वही, पृ० सं० – 526

तृतीय अध्याय

‘काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से’ का शिल्पगत वैशिष्ट्य

साहित्य की प्रत्येक विधा नितांत अलग-अलग अनुभूति से उत्सरित होती है और उसी के अनुरूप अलग-अलग रूपों में उसकी अभिव्यक्ति होती है । चाहे वह विधा कविता हो, कहानी हो, नाटक हो या उपन्यास हो । ये सभी विधाएं अलग-अलग अनुभूति क्षेत्र से जन्म लेती हैं और अलग-अलग रूपों में ढल जाती हैं । उपन्यास साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है । “उपन्यास में मानव जीवन अपेक्षाकृत अधिक समीपता के साथ चित्रित होता है ।”[1] उपन्यास के सन्दर्भ में प्रेमचंद लिखते हैं -“ मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है ।”[2] अतः यह एक ऐसी विधा है जिसमें सम्पूर्ण मानव जीवन के भिन्न-भिन्न रूपों और परिस्थितियों एवं रहस्यों को पूर्णता के साथ अभिव्यक्त करने की कोशिश की जाती है । साथ ही “समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृतियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृति उत्पन्न कर सकते हैं । किसी जनसमाज के बीच, काल की गति के अनुसार जो गूढ़ और चिन्त्य

परिस्थितियाँ खड़ी होती रहती हैं, उनको गोचर रूप में सामने लाना और कभी-कभी विस्तार का मार्ग भी प्रशस्त करना उपन्यासों का कार्य है ।”[3]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उपन्यास आधुनिक जीवन की सबलतम् अभिव्यक्ति का उत्कृष्टतम साधन है । जिस प्रकार आधुनिक जीवन और मानव चरित्र को समझना तथा विश्लेषित करना कठिन है उसी प्रकार उपन्यास का विवेचन-विश्लेषण भी बहुत कठिन कार्य है । उपन्यास के विवेचन-विश्लेषण, अनुशीलन और मूल्यांकन के विषय में दो विरोधी विचारधाराएँ हैं । कुछ विद्वान उपन्यास के विश्लेषण के लिए उसके तत्वों कथानक, चरित्र-चित्रण, वातावरण, संवाद, भाषा-शैली और उद्देश्य आदि का विश्लेषण आवश्यक मानते हैं । उनके अनुसार जब तक उपन्यास को उसके तत्वों के आधार पर विश्लेषित नहीं किया जाएगा, तब तक उपन्यास की सफलता-असफलता की घोषणा नहीं की जा सकती । विरोधी विचारधारा के विद्वानों का कहना है कि उपन्यास एक पूर्ण इकाई है । इकाई को तत्वों के आधार पर चीर-फाड़कर देखा-परखा नहीं जा सकता । जिस प्रकार मानव शरीर को तत्वों में विभाजित करके मानव का मूल्यांकन संभव नहीं है उसी प्रकार उपन्यास का विभाजित रूप में मूल्यांकन सरल नहीं है । अतः तत्त्वगत विवेचन निरर्थक है ।

उपर्युक्त दोनों विचारधाराएँ अपनी जगह सही प्रतीत होती है । साधारण पाठक के लिए जहाँ उपन्यास का तत्वगत विश्लेषण निरर्थक है वहीं आलोचक या विश्लेषक के लिए उपन्यास का तत्वगत विश्लेषण अत्यावश्यक है । चूँकि हम सुरेन्द्र

वर्मा के उपन्यास 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' का आलोचनात्मक अध्ययन कर रहे हैं इसीलिए इस उपन्यास का तत्वगत विश्लेषण अनिवार्य है । कथावस्तु और शिल्प को किसी भी गद्य-विधा का महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है । कथावस्तु के अंतर्गत कथ्य, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, उद्देश्य, समस्याएँ आदि तत्त्व समाहित होता है । कथावस्तु की दृष्टि से हम 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' उपन्यास का विश्लेषण इससे पहले अध्याय में कर चुके हैं ।

इस अध्याय में हम 'शिल्प' की दृष्टि से इस उपन्यास का मूल्यांकन करेंगे । 'शिल्प' अभिव्यक्ति का वह माध्यम है, जिसके द्वारा रचनाकार अमूर्त भाव या अनुभूति को मूर्त रूप या स्थूल रूप प्रदान करने का प्रयास करता रहता है । डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार – किसी भाव को एक निश्चित रूप देने के लिए जो विधान प्रस्तुत किया जाता है, वही उस कला की शिल्पविधि है । अतः हम कह सकते हैं कि " शिल्प कलात्मक निर्वाह की पद्धति है । यह किसी भी कला में साधना की प्रणाली अथवा प्रतिपादिती है ।"[4]

'शिल्प' शब्द का प्रयोग हस्तकला के क्षेत्र में सदियों से होता आता है । इस क्षेत्र में पत्थर, लकड़ी, मिट्टी आदि से चीजें बर्त्तन, गहने आदि बनाये जाते हैं । ये चीजें जिस कौशल से बनायी जाती है, उसी से 'शिल्प' शब्द का सम्बन्ध रहा है । इसीलिए संस्कृत कोश में 'शिल्प' शब्द का शाब्दिक अर्थ – मूर्तिकला, कारीगरी, हुनर आदि बताया गया है । इसी तरह ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में शिल्प का अर्थ इस

प्रकार दिया गया है – कलात्मक कार्यविधि की वह पद्धति जो संगीत अथवा चित्रकला में प्राप्य है ।

साहित्य में जब से रचना कौशल यानी साहित्यिक सौन्दर्य का विवेचन होने लगा, तब से हस्तकला के क्षेत्र के इस शब्द का प्रयोग साहित्य में होने लगा है । परन्तु हस्तकला के क्षेत्र में 'शिल्प' शब्द का जो अर्थ है वह साहित्य के क्षेत्र में नहीं है। साहित्य के क्षेत्र में शिल्प का अर्थ व्यापक है । साहित्यकार अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति सौन्दर्य के साथ करने की कोशिश करता है, जिसके लिए वह विविध ढंग, तरीके, विधियाँ अपनाता है । यही कलात्मक प्रयास 'शिल्प' कहलाता है । डॉ० कैलास वाजपेयी के अनुसार –" शिल्प में वस्तु (विषय और अनुभूति) की अभिव्यक्ति होती है । अपनी कलाकृति में कलाकार साक्षात्कार किये गये सौन्दर्य तथा (भावपरक) सत्य को न केवल अभिव्यक्त करना चाहता है अपितु उसे इस तरह अभिव्यक्त करना चाहता है कि वह एक सम्पूर्ण, सफल, सार्थक तथा सुन्दर कलाकृति बने । इसके लिए अपनाए गए सभी विधान, व्यवस्थाएँ, विधियाँ, आयास-प्रयास, रूप-गठन, रूप-योजनाएँ शिल्प में सम्मिलित है ।"[5]

इससे स्पष्ट है कि 'शिल्प' कलात्मक सौन्दर्य ही नहीं, कलात्मक सौन्दर्य की प्रक्रिया भी है । लेखक अपनी रचना में अपनी मानसिकता, अपनी सोच और अपनी दृष्टि को ही शिल्पित करता है । उपन्यास के सन्दर्भ में – उपन्यास के सृजन की पूरी प्रक्रिया ही उसका शिल्प-विधान है । शिल्प-विधि का सीधा सम्बन्ध विषय-वस्तु के

कलापक्ष से ही होता है। उपन्यास के शिल्प के विषय में डॉ० त्रिभुवन सिंह का मत समीचीन है – " उपन्यासों में अभिव्यक्ति पाने वाले जितने प्रसंग, व्यक्ति अथवा समाज होते हैं उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाए, यदि शिल्प न हो। इसके अभाव में तो कृति हवाई किला बन कर रह जाएगी। कल्पना और यथार्थ के भेद को समाप्त करने का काम शिल्प ही करता है। जिसके माध्यम से अभिप्रेत भावों अथवा उद्देश्यों का रूपांतरण संभव होता है।"[6]

साहित्य में 'शिल्प' का बहुत महत्त्व है। 'शिल्प' ही वह तत्व है जिसके कारण स्वरूप इतना विस्तृत है और उसमें विभिन्न विधाएँ काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, आत्मकथा आदि मौजूद है। शिल्प के इस विभिन्नता के कारण एक ही विषय-वस्तु के अनेक रूप मिलते हैं। उदहारणस्वरूप हम 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' उपन्यास को ले सकते हैं। इस उपन्यास की जो विषय-वस्तु है वह मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' की भी विषय-वस्तु है, परन्तु दोनों रचनाकार ने एक ही विषय-वस्तु को दो तरीके अर्थात् दो शिल्प के माध्यम से प्रस्तुत किया है इसीलिए दोनों रचनाएँ अलग-अलग विधा की रचना है। इससे ज्ञात होता है कि साहित्य में शिल्प का बहुत महत्त्व है।

'शिल्प' शब्द के लिए प्रविधि, प्रणाली, प्रक्रिया, रूप, आदि अनेक शब्दों का प्रयोग भारतीय विद्वानों ने किया है। उसी तरह पाश्चात्य आलोचकों ने फार्म, टेकनीक, सेटिंग जैसे अनेक शब्दों को शिल्प के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया है। लेकिन इनमें से किसी भी शब्द द्वारा 'शिल्प' का मौलिक अर्थ वहन नहीं होता।

‘शिल्प’ शब्द की व्यापकता या विस्तार इतना है कि ये सारे शब्द ‘शिल्प’ के समीप हैं पर पर्याय नहीं ।

‘काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से’ उपन्यास शिल्प की दृष्टि से बहुत ही सुगठित, सुव्यवस्थित और संतुलित है । इस उपन्यास का शिल्प अपने विभिन्न तत्वों- भाषा, संवाद, शैली, प्रतीक, बिम्ब आदि के माध्यम से कृति के कथ्य, वातावरण, परिवेश और वस्तु को उभारने में समर्थ है । चूँकि इस उपन्यास की कथावस्तु और पात्र ऐतिहासिक हैं इसीलिए लेखक ने तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण और परिवेश को चित्रित करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के पर्व-त्यौहार, रीति-रिवाज का सहारा लिया है, जो कि तत्कालीन परिवेश को प्रभावपूर्ण ढंग से उपस्थित करने में सहायता प्रदान करती है । जैसे तत्कालीन समाज में प्रेम की स्थिति और स्वरूप को चित्रित करने के लिए लेखक ने ‘शिशिरोत्सव’ का सहारा लिया है । ‘शिशिरोत्सव’ ऐसा उत्सव है जिसमें प्रेमी युगल एक-दूसरे के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं और समाज के सामने प्रतिबद्धता करते हुए स्वेच्छापूर्वक एक-दूसरे को स्वीकार करते हैं । इसमें एक रिवाज है प्रेमी द्वारा अपनी प्रेमिका के नाभि-प्रदेश पर ‘प्रामाणिक विशेषक’ बनाने का । यहाँ उपन्यासकार ने ‘शिशिरोत्सव’ का प्रयोजन तत्कालीन समाज के स्वच्छंद स्वरूप को दिखाने के लिए किया है, जो उपन्यासकार की कल्पना भी हो सकती है, तथा ‘प्रामाणिक विशेषक’ जैसे प्रतीक के माध्यम से लेखक ने कालिदास और मुग्धा के बीच के प्रेम-सम्बन्ध और अंतरंगता को सफलतापूर्वक चित्रित किया है । इसी तरह उपन्यास के दूसरे खंड में कालिदास के प्रति राजकुमारी प्रियंगुमंजरी के प्रेम भाव की गहनता को स्पष्ट करने

के लिए लेखक ने 'वसंतोत्सव' का प्रयोजन किया है । उज्जयिनी में प्रेम का प्रतीक 'लीलाकमल' है इसीलिए वसंतोत्सव के दिन राजकुमारी प्रियंगुमंजरी हाथ में 'लीलाकमल' लेकर कालिदास के सामने अपने प्रेम की गहनता प्रकट करती है । यहाँ 'प्रामाणिक विशेषक' ग्राम समाज के सरल एवं स्वाभाविक प्रवृति का प्रतीक है तो 'लीलाकमल' नगर के आभिजात्य संस्कृति का प्रतीक है । इस प्रकार हम देखते हैं कि इस उपन्यास का प्रतीक-योजना सशक्त है । लेखक ने बस दो प्रतीक के माध्यम से ग्राम और नगरीय संस्कृति के बीच का अन्तर स्पष्ट कर दिया ।

'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' उपन्यास आकार-प्रकार की दृष्टि से महाकाव्यात्मक उपन्यास है । इसका आकार-प्रकार बहुत वृहद है । इतना वृहद उपन्यास लिखना और शुरु से लेकर अंत तक उसका निर्वाह कर पाना चुनौतीपूर्ण कार्य होता है । सुरेन्द्र वर्मा के इस उपन्यास की शिल्पगत वैशिष्ट्य है कि महाकाव्यात्मक उपन्यास होने के बावजूद कहीं भी उपन्यास किसी भी तरह से स्खलित नहीं हो पाया है । कई उपन्यासों में इतनी सारी उपकथाएँ होती हैं कि उन उपकथाओं के सभी शिराओं को जोड़ना कठिन हो जाता है । कई बार पाठक उन उपकथाओं के भूल-भूलैया में खो जाते हैं । इस उपन्यास में भी बहुत-सी उपकथाएँ हैं परन्तु इसकी उपकथाएँ एक-दूसरे से अलग और बिखरी हुई नहीं हैं, बल्कि इसकी उपकथाएँ एक-दूसरे से इस तरह जुड़ी हुयी हैं कि एक-दूसरे से अलग होकर उनका कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता । इस उपन्यास की उपकथाएँ एक-दूसरे से जुड़ती हुई उपन्यास के मुख्य कथा को आगे बढ़ाते हुए उपन्यास को उसके उद्देश्य की ओर ले जाने में मदद करती है ।

अमूमन उपन्यास के वृहद स्वरूप के कारण उसमें निरसता आने लगती है, परन्तु इस उपन्यास में शुरु से लेकर अंत तक सरसता और रोचकता बनी रहती है । साथ ही पाठक की जिज्ञासा भी अंत तक बनी रहती है कि आगे क्या होगा ? यह जिज्ञासा कालिदास के साहित्यिक जीवन और व्यक्तिगत जीवन दोनों के प्रति बनी रहती है । साहित्यिक जीवन के प्रति इसलिए क्योंकि हम जानना चाहते हैं कि इतनी असफलताओं और अपमानों के बावजूद 'कालिदास' रचनात्मक स्तर पर सफल हुए या नहीं तथा उनकी रचनात्मक महत्त्वाकांक्षा पूरी हुए या नहीं ? कालिदास के व्यक्तिगत जीवन में हमारी जिज्ञासा इसलिए बनी रहती है कि कालिदास आत्म-सहचरी के रूप में राजकुमारी प्रियंगुमंजरी और मुग्धा में से किसका चयन करते हैं और अंततः कालिदास की शादी किससे होगी ? इस प्रकार हम देखते हैं कि यह उपन्यास स्वरूप में वृहद होते हुए भी सरस रोचक और अंत तक जिज्ञासा बनाये रखने वाला उपन्यास है । इस उपन्यास के शिल्पगत वैशिष्ट्य को हम निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत देख सकते हैं :-

शैली :-

उपन्यास के तत्वों में शैली का महत्त्वपूर्ण स्थान है । शैली शिल्प का एक अंग है । सामान्यतः अभिव्यंजना के प्रकार को 'शैली' कहा जाता है । साहित्य के विभिन्न रूप कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध आदि भावाभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियाँ हैं । शैली से वस्तुविशेष के रूप या आकार का बोध होता है । 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' उपन्यास वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है । इस

वृहदाकार उपन्यास में बहुत-सी घटनाओं, तथ्यों और विचारों को समाहित किया गया है । घटनाओं के सन्दर्भ में आमतौर पर विद्वानों की यह मान्यता है कि किसी भी उपन्यास में घटनाओं को क्रमानुसार प्रस्तुत किया जाना चाहिए । उपन्यास में क्रम-निर्धारण का बहुत महत्त्व है । " विभिन्न पात्रों के गतिशील मनोभावों, समविषम घटनाओं की तीव्रता और कलाकार की वेगवती कल्पनाशीलता का त्रिकोणात्मक संघर्ष इतना तीव्र होता है कि यदि क्रम निर्धारण की सहायता से मनोभावों, घटनाओं और कल्पनाओं में एक सूत्रता न उत्पन्न की जाए तो प्रभाव पूर्ण रचना की सृष्टि कल्पना मात्र होगी ।"[7]

इस उपन्यास के सन्दर्भ में विद्वानों की उपर्युक्त मान्यताएँ सही प्रतीत नहीं होती, क्योंकि इस उपन्यास की घटनाएँ न तो पूरी तरह क्रमबद्ध है और न ही क्रमानुसार । इस उपन्यास में घटनाओं की आवा-जाही लगी रहती है जो कई बार चौंकाने वाली होती है । उदहारणस्वरूप हम इस उपन्यास के 62वें दृश्योच्छ्वास को देख सकते हैं, जिसकी शुरुआत होती है राजकुमारी प्रियंगुमंजरी द्वारा हाथ में आम्रमंजरी वाला लीलाकमल लेकर कालिदास से मिलने जाने की घटना से, परन्तु बीच में ही मुग्धा से जुड़ी घटना आ जाती है । वसंतोत्सव के दिन जब पूरी उज्जयिनी उत्साहित हो खुशियाँ मना रही थी, तब कालिदास अपने कक्ष में बैठे अपनी रचना-प्रक्रिया में लीन रहते हैं । इसी समय उन्हें मुग्धा की याद आती है :-

" 'तुम तो चरम जीवानानुरागी होने का दावा करते हो !' अनुष्ठानप्रिया मुग्धा ने एक बार ऐसे ही कक्ष में उसके भूमिगत होने पर उपालम्भ दिया था,'फिर ऐसी

उदासीनता दिखा कर भरे यौवन में पुष्पधनुष का अपमान करने पर क्यों तुले हो?'"[8] मुग्धा के इसी वाक्य से घटना के बीच में ही दूसरी घटना की शुरुआत हो जाती है ।

इसी तरह 'मेघदूत का भावात्मक पर्यावरण' नामक दृश्योच्छ्वास में घटना की आवा-जाही लगी रहती है । इसमें वर्तमान और भूत की घटनाओं का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है । पता ही नहीं चलता कि कौन-सी घटना अभी वर्त्तमान में हो रही है और कौन-सी भूतकाल की घटना है । उदहारणस्वरूप हम निम्न पंक्तियों को देख सकते हैं :-

(1) " शुक भी तो तुम्हारे जैसा ढीठ है । चुप रहने के लिए मिश्री डली का उत्कोच माँगता है ! "[9]

(2) " 'वाहन क्रमांक 7, आसन क्रमांक 3 – तथाकथित आर्य कालिदास के लिए अंतिम आह्वान, अन्तिम चेतावनी ! कान खोल कर सुन लें, हमने आरक्षण की पुष्टि की है, स्थायीकरण नहीं !' फिर वापस लौटती पादुका ध्वनि के साथ धीमी बड़बड़ाहट भी सुनाई दे गयी, 'क्या विचित्र प्राणी है ! यह तो मेरी वृति छुड़वा कर ही मानेगा !'"[10]

(3) "विशेषक बनाओ !"[11]

यहाँ पहली पंक्ति में भूतकाल की घटना चल रही है जब कालिदास और मुग्धा साथ थे । फिर तुरंत दूसरी पंक्ति में अचानक वर्तमान की घटना आ जाती है उसके

बाद फिर से तीसरी पंक्ति में भूतकाल की घटना का वर्णन मिलता है। ऐसे वर्णन और भी बहुत जगह देखने को मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बगैर फ्लैशबैक शैली का प्रयोग किये हुए वर्त्तमान की चल रही घटनाक्रम में पूर्व की घटना का समायोजन उपन्यासकार ने बहुत विलक्षण ढंग से किया है, जो इस उपन्यास की बहुत बड़ी शिल्पगत विशिष्टता है।

भाषा :-

आधुनिक कथा समीक्षकों के अनुसार शिल्प का प्रमुख आधार 'भाषा' है। भाषा भावों और विचारों की संवाहिका है। उसके अभाव में साहित्यकार के लिए अपनी पूरी रचनात्मक सामग्री को सम्प्रेष्य बनाकर उसे पाठकीय संवेदना से जोड़ सकना अकल्पनीय है। भावों तथा विचारों के अभिव्यक्ति के सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम के रूप में न केवल उपन्यास लेखन के सन्दर्भ में, बल्कि साहित्य के प्रत्येक विधाओं की रचना के सन्दर्भ में भाषा का महत्त्व असंदिग्ध है। भाषा के बिना साहित्य रचना की कल्पना ही नहीं की जा सकती। रचनाकार को कृति के अंतर्गत जो कुछ भी कहना होता है, वह भाषा के माध्यम से ही कहता है और उसी माध्यम का आश्रय लेकर पाठक रचनाकार के उद्देश्य और सामने लाने वाली उसकी समूची रचनात्मक सामग्री के साथ अपना अंतरंग सम्बन्ध स्थापित करता है।

उपन्यास के तत्वों में भी भाषा-शैली का महत्त्वपूर्ण स्थान है। डॉ० त्रिभुवन सिंह के अनुसार – "शैली शिल्प का अंग है और इस प्रकार उपन्यास शिल्प को

सार्थकता प्रदान करने में भाषा का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है ।"[12] प्रत्येक साहित्यकार अपनी भाषा का प्रयोग अपने वर्ण्य-विषय के अनुसार करता है । जयदेव तनेजा के अनुसार – " रचनाकार कभी व्याकरण की कट्टरता से नहीं बँधता बल्कि अपनी दृष्टि से भाषा को संस्कार देता है ।"[13] उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा की भाषा व्याकरणसम्मत और परिनिष्ठित है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनकी सभी रचनाओं की भाषा एक जैसी है । उनकी रचनाओं की भाषा भी वर्ण्य-विषय के अनुरूप बदलती रहती है । उदहारणस्वरूप हम उनके उपन्यासों की भाषा को देख सकते हैं । 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास की विषय-वस्तु रंगमंच और सिनेमा जगत के इर्द-गिर्द घूमती रहती है तो उसके अनुरूप ही सिनेमा जगत के प्रचलित शब्द और उपभोगवादी संस्कृति में प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हुए हिंदी और अंग्रेजी के साथ रंगमंचीय भाषा का प्रयोग किया है उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा ने । 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास में मुंबई जैसे महानगर के अपराध और कुत्सित सेक्स का चित्रण करने के लिए वर्मा जी ने हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू शब्दों के साथ अश्लील शब्दावली का प्रयोग भी परिस्थिति के अनुसार किया है । हालाँकि सुरेन्द्र वर्मा का संस्कृत-साहित्य, कालिदास और उनके साहित्य के प्रति अगाध प्रेम, लगाव और रूचि के कारण इन उपन्यासों में जगह-जगह कालिदास का संस्कृत-श्लोक भी विद्यमान है और संस्कृत के शब्द भी । उनके इस प्रेम और लगाव का चरमोत्कर्ष हमें उनके चौथे उपन्यास 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' में दिखता है, जो कि पूर्णरूपेण संस्कृत साहित्य के महान कवि-नाटककार और सुरेन्द्र वर्मा के प्रिय पात्र 'कालिदास' के जीवन और उनकी रचना-प्रक्रिया पर आधारित है । चूँकि इस

उपन्यास की विषय-वस्तु संस्कृत साहित्य पर आधारित है इसीलिए इसमें हिंदी के तत्सम शब्दों और संस्कृत के श्लोकों के साथ संस्कृतनिष्ठ हिंदी का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सुरेन्द्र वर्मा वर्ण्य-विषय के अनुसार भाषा-प्रयोग करने में पूर्णतः सक्षम हैं और उनके इस उपन्यास की भाषा उपन्यास के कथ्य को उसकी पूर्णता में अभिव्यक्त करने में सफल हुई है ।

इस उपन्यास की भाषा की विशेषताओं को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं :-

तत्सम प्रधान भाषा :-

'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' उपन्यास की भाषा तत्सम प्रधान हिंदी है, जिसे संस्कृतनिष्ठ हिंदी भी कहा जा सकता है । इसमें तत्सम शब्दों की बहुलता है । जैसे :- वस्त्राच्छादन, कृषक, भूलोक, किसलय, पाठशाला, वृक्ष, मृदु, कुटीर, कृपाकांक्षी, प्रस्थान,अकिंचन, उपालंभ, मुद्रिका, भृकुटी, वाद्यवृन्द, शुभ्र, मंजूषा, कंटकी, जालपात्र, कटि, कूर्पासक, वेष्टन, पादुका आदि ऐसे बहुत से शब्द है ।

इस उपन्यास की तत्सम प्रधान भाषा के कारण इस उपन्यास की भाषा को कठिन बताते हुए, उपन्यास के महत्त्व को नकारा जाता है । उपन्यास की भाषा के सम्बन्ध में सामान्य रूप से मान्यता यह है कि उपन्यास की भाषा सरल और सहज होनी चाहिए । यह मान्यता कुछ हद तक सही भी है परन्तु प्रत्येक उपन्यास पर यह लागू नहीं होता, क्योंकि वर्ण्य-विषय के अनुरूप भाषा बदलती रहती है और बदलनी भी चाहिए, नहीं तो उपन्यास नीरस हो जाएगा और उसकी

प्रभावोत्पादकता भी खत्म हो जाएगी। चूँकि इस उपन्यास की विषय-वस्तु संस्कृत साहित्य के प्रतिष्ठित साहित्यकार 'कालिदास' और उनके रचनात्मक संघर्ष पर आधारित है, इसीलिए इसमें तत्सम प्रधान भाषा का प्रयोग किया गया है। तत्कालीन वातावरण, परिवेश और पात्रों की मनःस्थितियों को सहज, स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने में इस उपन्यास की भाषा पूर्णरूपेण सफल और सार्थक प्रतीत होती है। अतः हम कह सकते हैं कि तत्सम प्रधान भाषा इस उपन्यास की खामी नहीं, खूबी है।

नाट्य-परक भाषा :-

इस उपन्यास के भाषा की एक बड़ी विशेषता है उस पर पड़ने वाला नाट्य-भाषा का प्रभाव। 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' उपन्यास जिस व्यक्ति या साहित्यकार पर आधारित है वह व्यक्ति (कालिदास) और इस उपन्यास को लिखने वाले लेखक सुरेन्द्र वर्मा दोनों ही प्रसिद्ध नाटककार हैं। एक संस्कृत साहित्य के महान नाटककार हैं तो दूसरे हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार। तो जाहिर सी बात है कि इस उपन्यास के अन्य तत्वों के साथ-साथ इसकी भाषा भी नाटक से प्रभावित होगी। इस उपन्यास की भाषा नाटक की भाषा से बहुत प्रभावित है। इस प्रभाव को हम निम्न वाक्यों में देख सकते हैं :-

“ अब बोल – अपनी आत्मा तिल-तिल जलाते हुए मैंने एक रचना की – अन्तर के रक्त से लिखा था उसे – तेरे पास पढ़ने के लिये दो पल तक नहीं नराधम? ”[14]

“ मैं उनके प्रति आकर्षित था – कर रहा हूँ आत्म-स्वीकार । ”[15]

इसी तरह के और भी बहुत-से वाक्य है जिसे देख कर लगता है कि ये उपन्यास की नहीं नाटक की भाषा है ।

संवाद :-

किसी भी उपन्यास में सजीव पात्र, कथा-प्रसंगों को गति प्रदान करने के लिए जो परस्पर वार्तालाप करते हैं उसे ही संवाद कहते हैं । संवाद उपन्यास का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है । उपन्यास की जीवंतता बहुत कुछ इस पर ही निर्भर करती है । ‘काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से’ उपन्यास का संवाद बहुत ही जीवंत, सम्प्रेषणीय और प्रभावोत्पादक है । इसके संवाद कथा को सिर्फ आगे नहीं बढ़ाते हैं बल्कि भावों, विचारों, बाह्य एवं अन्तःसंघर्ष के बीच से कथा को अग्रसर भी करते हैं।

इस उपन्यास के संवाद की एक विशेषता यह है कि भाषा की तरह इसके संवाद भी नाटकीय है जिससे इस उपन्यास की सम्प्रेषणीयता बढ़ती है । उपन्यास का संवाद जहाँ सिर्फ पाठ करते हुए आगे बढ़ जाने जैसा होता है वहीं नाटक के संवाद में

साँसों के उतार-चढ़ाव का भी ध्यान रखना पड़ता है । इस उपन्यास में भी साँसों के उतार-चढ़ाव और वाक्य की संरचना पर मुख्य रूप से ध्यान दिया गया है जिसे हम निम्नलिखित संवाद को देखने पर समझ सकते हैं :-

" अब क्या करूँगा मैं ?... कृष्ण युद्ध चाहता है ! युद्ध चाहता है कृष्ण ! चाहता है कृष्ण युद्ध ! बलाघात बदलते हुए और ऊँचा हो गया स्वर, तो युद्ध करूँगा मैं - "[16]

ऐसे और भी बहुत से संवाद हैं जिन्हें देख कर लगता है कि ये उपन्यास के नहीं बल्कि किसी नाटक के संवाद हैं ।

उपशीर्षक :-

उपन्यास सामान्यतया कई खंडो और उपशीर्षकों में विभाजित होता है । उपन्यास का विभाजन शिल्प के अंतर्गत आता है । यह उपन्यास भी 95वें उपशीर्षकों में बंटा हुआ वृहद आकर का उपन्यास है । समान्यतः पाठक उपन्यास के उपशीर्षक को देख कर यह अनुमान कर लेते हैं कि उसमें क्या कहा गया है, परन्तु 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' उपन्यास के उपशीर्षक (दृश्योच्छवास) बिल्कुल नए तरह के हैं । इसके उपशीर्षक को देख कर हम उसके कथ्य का अंदाजा नहीं लगा सकते, क्योंकि उसके उपशीर्षक का कथ्य के साथ सीधे-सीधे सम्बन्ध नहीं बैठता है, बल्कि इनके बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उपशीर्षक के निहितार्थ को समझना आवश्यक है । उदाहरण के लिए हम इस उपन्यास के पहले ही

दृश्योच्छवास (उपशीर्षक) को देख सकते हैं, जिसका नाम है 'चौथा अग्नि' । परन्तु इस उपशीर्षक की पूरी कथा में मात्र एक जगह इस चौथे अग्नि की बात हुई है :-

" सुनन्दा कहती है, अग्नि तीन प्रकार की होती है – लकड़ी की, वृक्ष की और समुद्र की, पर मेरे शिक्षक ने बताया था कि एक चौथी अग्नि भी होती है – ज्ञान की।"[17] इसके अतिरिक्त और कहीं भी इस चौथे अग्नि की बात नहीं हुई, जिससे उपशीर्षक और कथ्य का सीधा-सीधा सम्बन्ध बैठता हो । परन्तु जब हम उसके निहितार्थ को जानते हैं तो उसका सम्बन्ध स्थापित कर पाते हैं । यहाँ चौथी अग्नि का तात्पर्य है महत्त्वाकांक्षा से । कालिदास रचनात्मक महत्त्वाकांक्षा की इसी अग्नि के कारण इस पूरे दृश्योच्छवास में जलते रहते हैं, कभी व्यक्तिगत स्तर पर तो कभी रचनात्मक स्तर पर । इस तरह के और भी उपशीर्षक हैं जिनका कथ्य से सीधा-सीधा सम्बन्ध नहीं दिखता । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस उपन्यास का उपशीर्षक भी इस उपन्यास के शिल्प की विशिष्टता है ।

विधागत संक्रमण :-

हिंदी साहित्य के इतिहास में विधाओं का संक्रमण एक दिलचस्प और अलग से अध्ययन का विषय हो सकता है । महाकाव्य में नाटकीय संभावनाओं का जितना सुन्दर उपयोग तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में हुआ है वह विचारणीय है । जब साहित्यिक विधाओं का अनुशासन शिथिल होता है और वे एक-दूसरे की परिधि में

संक्रमण करते हैं तब कुछ टूटता भी है और उसी के साथ बहुत कुछ नया जुड़ता भी है। इस उपन्यास के सन्दर्भ में भी यह बात लागू होती है।

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' के शिल्प की सबसे बड़ी विशिष्टता है विधागत संक्रमण। अमूमन देखा जाता है कि किसी एक विधा की रचना में दूसरे किसी एक विधा का ही संक्रमण होता है जैसे उपन्यास में नाटक का, नाटक में काव्य का, काव्य में नाटक का आदि। परन्तु सुरेन्द्र वर्मा के इस उपन्यास में एक साथ कई विधाओं का संक्रमण दिखता है। जिसे हम इस वाक्य में देख सकते हैं – "'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' (एक दृश्य-काव्याख्यान) बहुचर्चित रचनाकार सुरेन्द्र वर्मा का नया और महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।"[18] इस वाक्य में इस उपन्यास को दृश्य- काव्याख्यान कहा गया है अर्थात् यह उपन्यास एक साथ दृश्य (नाटक) भी है काव्य भी है और आख्यान (उपन्यास) तो ये है ही। इस उपन्यास में काव्यात्मकता, दृश्यात्मकता और कथात्मकता तीनों एक साथ विद्यमान है।

कविता और उपन्यास के सम्बन्ध में सामान्यतः यह धारणा है कि ये दो विरोधी ध्रुवों की विधाएँ हैं। कविता की भावात्मकता और उपन्यास में यथार्थ को केन्द्र में रखकर जब भी इन्हें परिभाषित करने की कोशिश की गई है तब इन विधाओं को दो ध्रुवों पर ही रखा गया है। यह धारणा पूरी तरह सही नहीं है क्योंकि कविता और उपन्यास दो अलग-अलग विधा होने के बावजूद एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। जिस भावात्मकता के आधार पर कविता को उपन्यास से अलग किया

जाता है वह उपन्यास में भी पाया जाता है । इसीलिए तो उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा जाता है । कविता और उपन्यास में भावों की एकरूपता हो सकती है बस दोनों के अभिव्यक्ति का ढंग अलग होता है । उपन्यास में जिन भावों को विस्तार मिलता है, वही जब संघनित होकर सार रूप में व्यक्त होता है तो कविता जन्म लेती है । भारतीय साहित्य की परम्परा में गद्य को कवियों की कसौटी माना गया है जिसे हम संस्कृत के प्रमुख आचार्य वामन के इस वाक्य में देख सकते हैं – 'गद्यं कवीनां निकषं' । आधुनिक युग के कवि जयशंकर प्रसाद, निराला, अज्ञेय, मुक्तिबोध आदि अनेक ऐसे बड़े कवि हैं जिन्होंने उपन्यास लिखा । इन कवियों के उपन्यासों में भी काव्यात्मकता विद्यमान है । काव्यात्मकता के अपने इसी गुण के कारण इनके उपन्यास अन्य उपन्यासों से विशिष्ट और अप्रतिम है । उपन्यास में विद्यमान काव्यात्मकता के महत्त्व को हम विजय कुमार के इन वाक्यों के माध्यम से समझ सकते हैं – " निरा गद्य यथार्थ के स्थूल ब्यौरों का पल्लू पकड़े-पकड़े पीछे-पीछे एक आज्ञाकारी, सहमा हुआ, घिसटता हुआ बालक है । और जब-जब गद्य के बाहरी खोल में कविता की आत्मा का वास हुआ है तब-तब उसमें एक अविश्वसनीय, खतरनाक, दुश्चरित्र गत्यात्मकता आई है ।"[19] इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यास में काव्यात्मकता का महत्त्वपूर्ण स्थान है और अपने काव्यात्मकता के कारण भी कई उपन्यास महत्त्वपूर्ण हो जाती है । सुरेन्द्र वर्मा मूलतः कवि न होकर एक प्रसिद्ध नाटककार और उपन्यासकार हैं फिर भी उनके इस उपन्यास में जगह-जगह

काव्यात्मकता विद्यमान है जो कि बहुत बड़ी बात है और इस उपन्यास की बहुत बड़ी विशेषता भी ।

उपन्यास तमाम बार विधाओं का संक्रमण इस प्रकार होता है कि उनके बीच की विभेदक रेखा मिटा जाती है । इसके कई उदाहरण सुरेन्द्र वर्मा के इस उपन्यास में देखे जा सकते हैं-

“ पूग वृक्ष पर लिपटी ताम्बूल लताओं के बीच आगे बढ़ते हुए उसने बन्धुजीव पुष्प देखे – मुग्धा-मुख के प्रवाल अधर की स्मृति जगाते हुए । उस स्पर्श को अन्तर में पुनःस्पन्दित करते हुए बंद आँखों से सुगन्धि के सहारे वह आगे बढ़ा, सुगन्धि के स्रोत तक पहुँच कर वह मृदु गन्ध भीतर भर ली, फिर बंधुजीव पर ओस की बूँदों को जिह्वा से सहलाया, चाता - मुग्धा के देहालिंगन की स्मृति के साथ । फिर गुनगुनाया”[20]

इन वाक्यों में हम इस उपन्यास में उपस्थित काव्यात्मकता को देख सकते हैं । इन वाक्यों का जो विन्यास है, इनमें भावों की जो सघनता है वह काव्यात्मक है । ऐसे बहुत से वाक्य और प्रसंग इस उपन्यास में है, जिनको देखने पर लगता है की इस पूरे उपन्यास पर काव्यात्मकता का एक झीना आवरण चढ़ा हुआ है । इस उपन्यास में उपस्थित आंतरिक लय, नाद और शब्दों की अर्थ सघनता पूरे उपन्यास को एक काव्यात्मक आभा देती है, वह भी गद्य में ।

काव्यात्मक तत्वों की तरह इस उपन्यास में नाटकीय तत्व भी विद्यमान है जिसे हम इस उपन्यास की भाषा और संवाद में देख चुके हैं। नाट्य-परक भाषा और संवाद के साथ-साथ इसमें नाट्य-युक्तियों का प्रयोग भी किया गया है। जिस प्रकार नाटक को छोटे-छोटे दृश्यों में विभाजित किया जाता है उसी प्रकार यह उपन्यास भी छोटे-छोटे उपशीर्षकों में विभाजित है जिसे उपन्यासकार ने उपशीर्षक न कहकर दृश्योच्छ्वास कहा है। इन दृश्योच्छ्वासों को इस प्रकार लिखा गया है कि इन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है।

साहित्यिक आलोचनात्मकता :-

यह उपन्यास, काव्य और नाटक के शिल्पगत विशेषताओं के साथ आलोचना से भी प्रभावित है। उपन्यास में साहित्यिक आलोचनात्मकता की गुंजाइश न के बराबर होती है, परन्तु इस उपन्यास में साहित्य के विभिन्न विधाओं की आलोचना मौजूद है जो इस उपन्यास के शिल्पगत महत्त्व को स्थापित करती है। इस उपन्यास में मौजूद साहित्यिक आलोचना की खासियत यह है कि यह ठस या नीरस आलोचना नहीं है। उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा ने उपन्यास की आलोचना में भी रचनात्मकता की गुंजाइश खोजी है। यह उपन्यास कालिदास के संघर्षरत रचनात्मक जीवन पर आधारित है इसीलिए इसमें कालिदास के साहित्य के माध्यम से साहित्यालोचन प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में नाट्य-आलोचना पर बहुत विस्तृत रूप से बातचीत की गई है। उदहारणस्वरूप हम इस उपन्यास के पहले खंड

के 10वें दृश्योच्छवास को देख सकते हैं जिसमें कालिदास नाट्य-रचना के लिए नाट्यशास्त्र की कई किताब पढ़ते हुए उसकी आलोचना करते हैं :-

“ महान रंगवेत्ता ने लिखा था : एक अभिनीत स्थल पर एक दृश्य का विधान है । तुम यह ग्रन्थ लिखने के अधिकारी हो ही नहीं – कालिदास झुंझलाया – मेरे जैसा नवसिखिया तक जानता है कि विष्कम्भक अथवा यवनिका का व्यवहार करते हुए एक अभिनीत स्थल पर दस दृश्य हो सकते हैं । महत्त्वपूर्ण यह है कि उनका संयोजन कितना कलात्मक है ।”[21]

विषय-वस्तु के सन्दर्भ में लिखते हैं :-

“ विषय-वस्तु का परिचय रूचिर होना चाहिए । कथा का विकास निरंतर होना आवश्यक है । हर दृश्य ऐसा होना चाहिए, जो कथा को पूर्ववर्ती दृश्य से आगे ले जाए । चरित्र-चित्रण सतर्क होना चाहिए – पात्र की विशेषताएँ धीरे-धीरे प्रकट होती है, तो पात्र प्रामाणिक बन जाता है ।”[22]

संवाद से सन्दर्भ में :-

“ नाटककार संवाद में संवाद के भावानुसार सुरलहर और पात्रों का कार्य-व्यापार तो लिखता है, पर क्या पात्रों की गतियों के निर्धारण की रूपरेखा भी बनाता है ? किसी नाट्य-कृति में उसने नहीं देखा – इसलिए कि यह निर्देशक का दायित्व है ?

ठीक है । पर यदि नाट्य-रचना महत्त्वाकांक्षी की गति अवधारणा व्यापक और सूक्ष्म होगी, तो नाट्य-रचना में कसाव और भाव गहनता सहज हो जाएगी ।"[23]

इसी तरह कालिदास और उनकी काव्य-रचना ऋतुसंहार, मेघदूत, रघुवंश आदि पर बातचीत करते हुए काव्यालोचन की ओर भी यह उपन्यास अग्रसर होता है। 'ऋतुसंहार' की आलोचना के माध्यम से उपन्यासकार ने काव्य-रचना के पुरातन मानदण्ड पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करते हुए उसे बदलने की बात की है जिसे सुकेतु के इन वाक्यों में देखा जा सकता है :-

" ऋतुसंहार नयी संवेदना से स्पन्दित हो रहा है । यहाँ हम षष्ठअंगीय ऋतुमाला में अनुभूत होने वाले मानवीय और नैसर्गिक एन्द्रिय-बोध का विविध, मुग्धकारी और उर्जावान सर्वांगीण वर्णक्रम देखते हैं । यह काव्य-कृति हमसे माँग करती है कि हम उन पुरातन काव्य-मानदंडो का पुनःपरीक्षण और पुनर्निर्धारण करें, जो नायक-नायिका भेद, प्रमुख भाव और फलागम को ही रस-निष्पति का स्रोत मानते हैं । अब हमें एक नये काव्यशास्त्र, बन्धनमुक्त काव्यशास्त्र को लेकर विमर्श करना ही होगा ।"[24]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस उपन्यास में उपन्यास, काव्य और नाटक के साथ-साथ आलोचनात्मक तत्त्व भी विद्यमान है जो उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा के समृद्ध और संपन्न साहित्यिक दृष्टि का परिचायक भी है । " उपन्यास साहित्य की दुनिया का संयुक्त परिवार है उसकी कोई उपशाखा मात्र नहीं ; उसमें कहानी का इतिवृत्तात्मक तत्व भी है और अनेक सघन भावात्मक क्षणों में कविता भी, उसकी

घटनाओं के बहाव में स्पष्ट नाटकीय तत्व भी है और दार्शनिकता से भरे निष्कर्षों में निबंध की तटस्थ आलोचनात्मकता भी ।”[25] उपन्यास से सम्बन्धित प्रख्यात कथालेखिका मृणाल पाण्डे का यह मत सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास ‘काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से’ के सन्दर्भ में पूरी तरह सही प्रतीत होती है ।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ० अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ० सं० – 91

2. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, पृ० सं० – 54

3. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० सं० – 536

4. Encyclopedia Britannica, volume-27, page - 870

5. Kenneth Macnichol, The technique of fiction, page – 18

6. डॉ० त्रिभुवन सिंह, हिंदी उपन्यास परम्परा और प्रयोग, पृ० सं० – 22

7. डॉ० सरोजनी त्रिपाठी, आधुनिक हिंदी उपन्यास में वस्तु विन्यास, पृ० सं० - 41

8. सुरेन्द्र वर्मा, काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से, पृ० सं० – 329

9. वही, पृ० सं० – 375

10. वही, पृ० सं० – 376

11. वही, पृ० सं० – 376

12. डॉ० त्रिभुवन सिंह, वही, पृ० सं० – 394

13. जयदेव तनेजा, आज का हिंदी नाटक, पृ० सं० – 151

14. सुरेन्द्र वर्मा, काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से, पृ० सं० – 195

15. वही, पृ० सं० – 478

16. वही, पृ० सं० – 60

17. वही, पृ० सं० – 22

18. वही, फ्लैप पृष्ठ

19. विवेक श्रीवास्तव, उपन्यास और कविता : विधाओं का जनतंत्र, पृ० सं० – 38

20. सुरेन्द्र वर्मा, काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से, पृ० सं० – 25

21. वही, पृ० सं० – 65-66

22. वही, पृ० सं० – 66

23. वही, पृ० सं० – 61

24. वही, पृ० सं० – 292

25. विवेक श्रीवास्तव, उपन्यास और कविता : विधाओं का जनतंत्र, पृ० सं० – 36

उपसंहार

हिंदी साहित्य में ऐतिहासिक-पौराणिक उपन्यास लेखन की शुरुआत किशोरीलाल गोस्वामी और वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास लेखन से हुई । सुरेन्द्र वर्मा के इस उपन्यास 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' की कथावस्तु और चरित्र दोनों ही ऐतिहासिक है परन्तु यह उपन्यास किशोरीलाल गोस्वामी और वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की परंपरा में नहीं आता है बल्कि हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की परंपरा का प्रतीत होता है । क्योंकि दोनों ही संस्कृत साहित्य के महान साहित्यकार पर लिखा गया उपन्यास है और दोनों उपन्यास के केंद्र में उन साहित्यकारों का जीवन है । जिस प्रकार 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में उपन्यासकार हजारीप्रसाद द्विवेदी की काल्पनिकता सर्वत्र विद्यमान है उसी तरह सुरेन्द्र वर्मा के इस उपन्यास में भी । कथा, चरित्र और वातावरण के साथ-साथ इस उपन्यास की भाषा भी 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से प्रभावित है । जिस प्रकार द्विवेदी जी ने अपने उपन्यास में तत्सम शब्दों और संस्कृत के श्लोक को महत्त्व देते हुए संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है उसी तरह सुरेन्द्र वर्मा के इस उपन्यास में संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है जो कि उपन्यास की विषय-वस्तु, चरित्र और वातावरण के अनुरूप है । अतः हम कह सकते हैं कि सुरेन्द्र वर्मा के इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में कहीं-न-कहीं 'बाणभट्ट की आत्मकथा' मौजूद है।

इस उपन्यास में कालिदास के जीवन का चित्रण करते हुए सुरेन्द्र वर्मा ने 'रचना-प्रक्रिया के शुरुआती दिनों से लेकर एक महत्त्वपूर्ण कवि और प्रसिद्ध नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित होने' तक की उनकी कथा के साथ-साथ उनकी रचनाओं का मूल्यांकन भी किया है । यह उपन्यास कालिदास जैसे ऐतिहासिक पात्र एवं उनके जीवन पर आधारित जरूर है, परन्तु इस उपन्यास में चित्रित कालिदास एक आधुनिक मनुष्य हैं जिनका जीवन विभिन्न समस्याओं और द्वंद्वों से घिरा हुआ है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने कालिदास के माध्यम से एक रचनाकार की दयनीय स्थिति, उनके जीवन में आने वाली सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्या, उनकी रचना-प्रक्रिया एवं रचना-प्रक्रिया में आनेवाले अवरोध तथा उन अवरोधों से उत्पन्न उनकी कष्टपूर्ण मानसिक स्थिति का यथार्थ चित्रण किया गया है ।

इस उपन्यास के पात्र सहज, स्वभाविक और जीवंत हैं । उपन्यास में किसी चरित्र के व्यक्तित्व को उद्घाटित करने के लिए उसका विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया है, बल्कि उस चरित्र के कार्य-व्यापार के माध्यम से उसके व्यक्तित्व को उद्घाटित किया गया है । इस उपन्यास के वातावरण का इसके विषय-वस्तु को प्रभावशाली और स्वाभाविक बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान है ।

इस उपन्यास पर शोध कार्य करते हुए कई प्रश्न मेरे सामने आए । जैसे कि आलोचना के क्षेत्र में नाटककार सुरेन्द्र वर्मा को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला परन्तु उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा को नहीं, ऐसा क्यों ? क्या कारण है कि विभिन्न विधाओं में कालिदास पर लिखी गयी रचनाएँ बेहद लोकप्रिय और चर्चित हुईं परन्तु यह

रचना न तो लोकप्रिय हुई और न ही चर्चित ? कहीं इस उपन्यास के अलोकप्रिय होने का कारण इसकी संस्कृतनिष्ठ भाषा तो नहीं है ? वर्तमान समय में लोग सरल और सहज भाषा को पसंद करते है और संस्कृतनिष्ठ भाषा से बचने की कोशिश करते हैं या फिर अपने महाकाव्यात्मक स्वरूप के कारण यह उपन्यास पाठकों को अपने प्रति आकर्षित नहीं कर पाया ।

इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशिष्टता है इसकी भाषा और शिल्प । चूँकि इस उपन्यास की विषय-वस्तु संस्कृत साहित्य के प्रतिष्ठित साहित्यकार कालिदास और उनके रचनात्मक संघर्ष पर आधारित है, इसीलिए इसमें तत्सम प्रधान भाषा का प्रयोग किया है सुरेन्द्र वर्मा ने । तत्कालीन वातावरण, परिवेश और पात्रों की मनःस्थितियों को सहज, स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त करने में इस उपन्यास की भाषा पूर्णरूपेण सफल और सार्थक प्रतीत होती है । अपनी शिल्पगत विशिष्टता के कारण ही यह उपन्यास कभी नाटक प्रतीत होता है, कभी काव्याख्यान प्रतीत होता है तो कभी साहित्यिक आलोचना । इस प्रकार हम देखते हैं कि सुरेन्द्र वर्मा का यह उपन्यास कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपन्यास है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

आधार ग्रन्थ :

1. सुरेन्द्र वर्मा, काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, संस्करण – 2013

सहायक ग्रन्थ :

1. अल्बर्ट कुक, द मीनिंग ऑफ फिक्शन, वायने यूनिवर्सिटी प्रेस, 1960

2. डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 2012

3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, संस्करण – 2005

4. ई. एम. फोरस्टर, आस्पेक्ट्स ऑफ नॉवेल, एडवर्ड अर्नाल्ड प्रकाशन , 1956

5. इन्द्रनाथ मदान, हिंदी नाटक और रंगमंच : पहचान और परख, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 1965

6. केनेथ मैकनिकोल, द टेकनिक ऑफ फिक्शन, अल्बिअन प्रकाशन,1930

7. गिरीश रस्तोगी, समकालीन हिंदी नाटककार, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली-51, प्रथम संस्करण

8. गिरीश रस्तोगी, समकालीन हिंदी नाटक की संघर्ष चेतना, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़ प्रकाशन, प्रथम संस्करण

9. जयदेव तनेजा, आज का हिंदी नाटक, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 1990

10. जयदेव तनेजा, समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 1979

11. जयदेव तनेजा, हिंदी रंगकर्म : दशा और दिशा, तक्षशिला प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण

12. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, भार्गव प्रेस, इलाहाबाद, संस्करण – 1956

13. रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण – 2015

15. विवेक श्रीवास्तव, उपन्यास और कविता : विधाओं का जनतंत्र, शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली, संस्करण – 2011

16. सुरेन्द्र वर्मा, तीन नाटक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण - 1972

17. सुरेन्द्र वर्मा, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 1974

18. सुरेन्द्र वर्मा, आठवाँ सर्ग, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 1976

19. सुरेन्द्र वर्मा, छोटे सैयद बड़े सैयद, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण – 1981

20. सुरेन्द्र वर्मा, शकुन्तला की अँगूठी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण – 1990

21. सुरेन्द्र वर्मा, कैद-ए-हयात, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 1993

22. डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिंदी उपन्यास : परंपरा और प्रयोग, संस्करण – 1974